CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

10 वर्ष (2016-2025)

अध्यायवार

राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

हल प्रश्न-पत्र

10 वर्ष (2016-2025)

अध्यायवार
राजनीति विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध

आईएएस मुख्य परीक्षा प्रश्नोत्तर रूप में

हल प्रश्न-पत्र

यह पुस्तक संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के वैकल्पिक विषय के साथ-साथ राज्य लोक सेवा आयोगों की मुख्य परीक्षाओं तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु भी समान रूप से उपयोगी है।

- पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हों तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हों।
- इस पुस्तक में प्रश्नों से संबंधित अन्य विशिष्ट जानकारियों को भी उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न-पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।
- इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपनी उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृत्ति व प्रकृति को समझने के लिए भी कर सकते हैं।

संपादकः एन. एन. ओझा

हलः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र : 2016-2025

प्रथम प्रश्न-पत्र

राजनीतिक सिद्धांत एवं भारतीय राजनीति

1. **राजनीतिक सिद्धांत : अर्थ एवं उपागम** 1-8

2. **राज्य के सिद्धांत** 9-17
   - उदारवादी, नवउदारवादी, मार्क्सवादी, बहुवादी, पश्च-उपनिवेशी एवं नारी-अधिकारवादी

3. **न्याय** 18-21
   - रॉल्स के न्याय के सिद्धांत के विशेष संदर्भ में न्याय के संप्रत्यय एवं इसके समुदायवादी समालोचक

4. **समानता** 22-27
   - सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक, समानता तथा स्वतंत्रता के बीच संबंध, सकारात्मक कार्य

5. **अधिकार** 28-32
   - अर्थ एवं सिद्धांत, विभिन्न प्रकार के अधिकार, मानवाधिकार की संकल्पना

6. **लोकतंत्र** 33-38
   - शास्त्रीय और समकालीन सिद्धांत

7. **शक्ति, प्राधान्य, विचारधारा और वैधता की संकल्पना** 39-42

8. **राजनैतिक विचारधाराएं** 43-51
   - उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, फासीवाद, गांधीवाद और नारी-अधिकारवाद

9. **भारतीय राजनीतिक चिंतन** 52-59
   - धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और बौद्ध परंपराएं; सर सैयद अहमद खान, श्री अरविंद, एम.के. गांधी, बी.आर. अम्बेडकर, एम.एन. रॉय

10. **पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन** 60-69
    - प्लेटो, अरस्तू, मैकियावेली, हॉब्स, लॉक, जॉन एस. मिल, मार्क्स, ग्राम्स्की, हान्ना आरेन्ट

भारतीय शासन एवं राजनीति

1. **भारतीय राष्ट्रवाद** 70–76

(क) भारत के स्वाधीनता संग्राम की राजनैतिक कार्यनीतियां: संविधानवाद से जन सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा एवं भारत छोड़ो; उग्रवादी एवं क्रांतिकारी आंदोलन, किसान एवं कामगार आंदोलन

(ख) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य : उदारवादी, समाजवादी एवं मार्क्सवादी; उग्र मानवतावादी एवं दलित

2. **भारत के संविधान का निर्माण** 77–80

- ब्रिटिश शासन का रिक्थ; विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य।

3. **भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं** 81–87

- प्रस्तावना, मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य, नीति निदेशक सिद्धांत, संसदीय प्रणाली एवं संशोधन प्रक्रिया; न्यायिक पुनर्विलोकन एवं मूल संरचना सिद्धांत

4. **केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के प्रधान अंग** 88–94

(क) केंद्र सरकार के प्रधान अंग : कार्यपालिका, विधायिका एवं सर्वोच्च न्यायालय की विचारित भूमिका एवं वास्तविक कार्य प्रणाली

(ख) राज्य सरकार के प्रधान अंग : कार्यपालिका, विधायिका एवं उच्च न्यायालयों की विचारित भूमिका एवं वास्तविक कार्य प्रणाली

5. **आधारिक लोकतंत्र** 95–100

- पंचायती राज एवं नगर शासन; 73वें एवं 74वें संशोधनों का महत्व; आधारिक आंदोलन

6. **संवैधानिक/सांविधिक संस्थाएं** 101–111

- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

7. **संघ राज्य पद्धति** 112–118

- सांविधानिक उपबंध, केन्द्र राज्य संबंधों का बदलता स्वरूप, एकीकरणवादी प्रवृत्तियां एवं क्षेत्रीय आकांक्षाएं; अंतर-राज्य विवाद

8. **योजना और आर्थिक विकास** 119–124

- नेहरूवादी एवं गांधीवादी परिप्रेक्ष्य, योजना की भूमिका एवं निजी क्षेत्र, हरित क्रांति, भूमि सुधार एवं कृषि संबंध, उदारीकरण एवं आर्थिक सुधार

9. **भारतीय राजनीति में जाति, धर्म एवं नृजातीयता** 125–131

10. **दल प्रणाली** 132–136

- राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल, दलों के वैचारिक एवं सामाजिक आधार, बहुदलीय राजनीति के स्वरूप, दबाव समूह, निर्वाचक आचरण की प्रवृत्तियां, विधायकों के बदलते सामाजिक-आर्थिक स्वरूप

11. **सामाजिक आंदोलन** 137–140

- नागरिक स्वतंत्रताएं एवं मानवाधिकार आंदोलन; महिला आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन

द्वितीय प्रश्न-पत्र

तुलनात्मक राजनीति तथा अंतरराष्ट्रीय संबंध

1. **तुलनात्मक राजनीति** 141–145
   - स्वरूप एवं प्रमुख उपागम, राजनैतिक अर्थव्यवस्था एवं राजनैतिक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य; तुलनात्मक प्रक्रिया की सीमाएं

2. **तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में राज्य** 146–150
   - पूंजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में राज्य के बदलते स्वरूप एवं उनकी विशेषताएं तथा उन्नत औद्योगिक एवं विकासशील समाज

3. **राजनैतिक प्रतिनिधान एवं सहभागिता** 151–154
   - उन्नत औद्योगिक एवं विकासशील सभाओं में राजनैतिक दल, दबाव समूह एवं सामाजिक आंदोलन

4. **भूमंडलीकरण** 155–163
   - विकसित और विकासशील समाजों से प्राप्त अनुक्रियाएं

5. **अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के उपागम** 164–168
   - आदर्शवादी, यथार्थवादी, मार्क्सवादी, प्रकार्यवादी एवं प्रणाली सिद्धांत

6. **अंतरराष्ट्रीय संबंधों में आधारभूत संकल्पनाएं** 169–178
   - राष्ट्रीय हित, सुरक्षा एवं शक्ति; शक्ति संतुलन एवं प्रतिरोध; पर-राष्ट्रीय कर्त्ता एवं सामूहिक सुरक्षा; विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं भूमंडलीकरण

7. **बदलती अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था** 179–186

   महाशक्तियों का उदय, कार्यनीतिक एवं वैचारिक द्विध्रुवीयता, शास्त्रीकरण की होड़ एवं शीत युद्ध; नाभिकीय खतरा

8. **अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का उद्भव** 187–189
   - ब्रेटनवुड से विश्व व्यापार संगठन तक; समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं तथा पारम्परिक आर्थिक सहायता परिषद (CMEA); नव अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की तृतीय विश्व की मांग; विश्व अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण

9. **संयुक्त राष्ट्र** 190–200
   - विचारित भूमिका एवं वास्तविक लेखा-जोखा; विशेषीकृत संयुक्त राष्ट्र अभिकरण-लक्ष्य एवं कार्यकरण; संयुक्त राष्ट्र सुधारों की आवश्यकता

10. **विश्व राजनीति का क्षेत्रीयकरण** 201–210
    - यूरोपीय संघ, आसियान, एपेक, सार्क, नाफ्टा

11. **समकालीन वैश्विक सरोकार** 211–220
    - लोकतंत्र, मानवाधिकार, पर्यावरण, लिंग न्याय, आतंकवाद, नाभिकीय प्रसार

भारत तथा विश्व

1. **भारतीय विदेश नीति** 221–236
   - विदेश नीति के निर्धारक; नीति निर्माण की संस्थाएं; निरंतरता एवं परिवर्तन

2. **गुट निरपेक्ष आंदोलन को भारत का योगदान** 237–239
   - विभिन्न चरण; वर्तमान भूमिका

3. **भारत एवं दक्षिण एशिया** 240–250
   (क) क्षेत्रीय सहयोग : SAARC–पिछले निष्पादन एवं भावी प्रत्याशाएं
   (ख) दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में
   (ग) भारत की "पूर्व अभिमुखन" नीति
   (घ) क्षेत्रीय सहयोग की बाधाएं : नदी जल विवाद; अवैध सीमा पार उत्प्रवासन; नृजातीय द्वंद्व एवं उपप्लव; सीमा विवाद

4. **भारत और वैश्विक दक्षिण** 251–257
   - अफ्रीका एवं लातिनी अमेरिका के साथ संबंध; NIEO एवं WTO वार्ताओं के लिए आवश्यक नेतृत्व की भूमिका

5. **भारत और वैश्विक शक्ति केंद्र** 258–273
   - यूएसए, यूरोपीय संघ (ईयू), जापान, चीन और रूस

6. **भारत और संयुक्त राष्ट्र प्रणाली** 274–278
   - संयुक्त राष्ट्र शान्ति अनुरक्षण में भूमिका; सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता की मांग

7. **भारत एवं नाभिकीय प्रश्न** 279–285
   - बदलते प्रत्यक्षण एवं नीति

8. **भारतीय विदेश नीति में हाल के विकास** 286–298
   - अफगानिस्तान में हाल के संकट पर भारत की स्थिति; इराक एवं पश्चिम एशिया; यूएस एवं इजराइल के साथ बढ़ते संबंध; नई विश्व व्यवस्था की दृष्टि

◆❖◆❖◆❖◆

प्रथम प्रश्न-पत्र

राजनीतिक सिद्धांत एवं भारतीय राजनीति

1 राजनीतिक सिद्धांत : अर्थ एवं उपागम

प्र. राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के दार्शनिक उपागम को समझाइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन का दार्शनिक दृष्टिकोण राजनीति, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार और आदर्श राज्य से जुड़े मानक और नैतिक प्रश्नों पर केंद्रित है। यह केवल "क्या है" से ही नहीं, बल्कि "क्या होना चाहिए" से भी संबंधित है।

- प्लेटो, अरस्तू, हॉब्स, लॉक, रूसो, कांट और रॉल्स जैसे विचारकों ने राजनीतिक सत्ता और संस्थाओं के नैतिक आधारों का मूल्यांकन करने के लिए इसी दृष्टिकोण का प्रयोग किया।
- यह अनुभवजन्य अवलोकन की तुलना में मूल्यों, सिद्धांतों और तर्क पर अधिक बल देता है। इस प्रकार, यह राजनीतिक प्रणालियों के मूल्यांकन के लिए एक महत्वपूर्ण ढाँचा प्रदान करता है।
- यह दृष्टिकोण राजनीति को केवल शक्ति या व्यवहार का विषय न मानकर मानवता के नैतिक उद्देश्यों और आदर्श शासन की ओर मार्गदर्शन करता है।

प्र. राजनीतिक सिद्धांत के अध्ययन के लिए व्यवहारवादी और संस्थावादी उपागम का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: राजनीतिक सिद्धांत का अध्ययन संस्थावादी (पारंपरिक) से व्यवहारवादी (आधुनिक) दृष्टिकोणों की ओर विकसित हुआ है। दोनों ही राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझने का प्रयास करते हैं, लेकिन उनके केंद्र बिंदु, पद्धति और उद्देश्यों में भिन्नता है।

अध्ययन का केंद्रबिंदु

- **संस्थावादी उपागम:** औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं-विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, संविधान और कानूनों-पर जोर देता है।
- **व्यवहारवादी उपागम:** राजनीतिक कर्ताओं-मतदाताओं, नेताओं, समूहों और उनके निर्णय लेने के तरीकों-के व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करता है।

विश्लेषण की प्रकृति:

- **संस्थावादी उपागम:** मानक और वर्णनात्मक; अध्ययन करता है कि संस्थाओं को कैसे कार्य करना चाहिए।
- **व्यवहारवादी उपागम:** अनुभवजन्य और वैज्ञानिक; अध्ययन करता है कि व्यक्ति वास्तव में राजनीतिक परिस्थितियों में कैसे व्यवहार करते हैं।

कार्यप्रणाली

- **संस्थावादी उपागम:** ऐतिहासिक, कानूनी और दार्शनिक विधियों का उपयोग करता है।
- **व्यवहारवादी उपागम:** आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए मात्रात्मक तकनीकों, सर्वेक्षणों और सांख्यिकीय मॉडलों का उपयोग करता है।

प्रमुख मान्यताएँ

- **संस्थावादी उपागम:** यह मानता है कि संस्थाएँ राजनीतिक परिणामों को आकार देती हैं और स्थिरता बनाए रखती हैं।
- **व्यवहारवादी उपागम:** यह मानता है कि मानवीय व्यवहार, प्रेरणाएँ और दृष्टिकोण संस्थाओं की तुलना में राजनीतिक गतिशीलता को अधिक निर्धारित करते हैं।

प्रमुख विद्वान

- **संस्थावादी उपागम:** अरस्तू, मोंटेस्क्यू, ब्राइस और हेरोल्ड लास्की।
- **व्यवहारवादी उपागम:** डेविड ईस्टन, गेब्रियल आलमंड, रॉबर्ट डाहल और हर्बर्ट साइमन।

आलोचनाएँ

- **संस्थावादी उपागम:** स्थिर, औपचारिक और मानवीय व्यवहार की उपेक्षा के लिए आलोचना की गई।
- **व्यवहारवादी उपागम:** अत्यधिक वैज्ञानिकता, मूल्य-तटस्थता और राजनीति के नैतिक एवं मानक पहलुओं की उपेक्षा के लिए आलोचना की गई।

अंतर्संबंध

- आधुनिक राजनीति विज्ञान तेजी से एक संश्लेषित दृष्टिकोण अपना रहा है, जो व्यवहार संबंधी अंतर्दृष्टि को संस्थागत संरचनाओं के साथ जोड़ता है - जिसे उत्तर-व्यवहारवाद के रूप में जाना जाता है।

निष्कर्ष: संस्थावादी उपागम संरचना और मानक मार्गदर्शन प्रदान करता है, जबकि व्यवहारवादी उपागम अनुभवजन्य गहराई प्रदान करता है। ये दोनों मिलकर मूल्यों को साक्ष्यों के साथ और संस्थाओं को व्यवहार के साथ एकीकृत करके राजनीतिक विश्लेषण को समृद्ध बनाते हैं।

2

राज्य के सिद्धांत

प्र. बहु-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से समानता और उदारवाद के मध्य संबंध पर एक टिप्पणी लिखें।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: बहु-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समानता और उदारवाद का संबंध परस्पर निर्भर है। उदारवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अधिकारों और आत्म-अभिव्यक्ति पर बल देता है, वहीं समानता यह सुनिश्चित करती है कि विविध सांस्कृतिक समूहों को समान अवसर और सम्मान मिले।

- यदि उदारवाद केवल बहुसंख्यक संस्कृति की स्वतंत्रता तक सीमित हो जाए तो अल्पसंख्यक समूहों की समानता बाधित होती है। इसी प्रकार यदि समानता सांस्कृतिक भिन्नताओं को अनदेखा कर दे तो उदार मूल्यों की आत्मा प्रभावित होती है। अत: बहु-सांस्कृतिक समाज में उदारवाद और समानता का संतुलन ही न्याय, विविध ता के संरक्षण और समावेशी लोकतांत्रिक व्यवस्था की गारंटी प्रदान करता है।

प्र. "राज्य ने..... व्यैक्तिकता का अंत करके मानव सभ्यता की गंभीर हानि की है, जो कि हर विकास का आधार है।"..... महात्मा गांधी। स्पष्ट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: महात्मा गांधी राज्य को एक आवश्यक बुराई मानते थे, उनका मानना था कि राज्य का अत्यधिक नियंत्रण व्यक्तियों की नैतिक और रचनात्मक स्वतंत्रता को नष्ट कर देता है। गांधी के लिए, व्यक्तिगत विवेक और स्वशासन (स्वराज) बाहरी नियमन और सत्ता से श्रेष्ठ थे।

कथन का अर्थ

- गांधी इस बात पर जोर देते हैं कि व्यक्तित्वख़नैतिक चुनाव, रचनात्मकता और आत्म-अनुशासन की क्षमता-मानव प्रगति का आधार है।
- जब राज्य अति-केंद्रीकृत हो जाता है, तो वह नागरिकों को नैतिक एजेंटों के बजाय प्रजा के रूप में मानता है, जिससे अनुरूपता और निर्भरता को बढ़ावा मिलता है।

आधुनिक राज्य की आलोचना

- गांधी ने भौतिकवाद, हिंसा और नैतिक पतन को बढ़ावा देने के लिए आधुनिक औद्योगिक और नौकरशाही राज्य की आलोचना की।
- उनका मानना था कि राज्य की शक्ति अक्सर जबरदस्ती और अवैयक्तिकरण की ओर ले जाती है, मानवीय मूल्यों की जगह यांत्रिक दक्षता ले लेती है।
- यह आत्मनिर्भरता और व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास को कमजोर करता है।

समाज का गांधीवादी दृष्टिकोण

- गांधीजी ग्राम स्वशासन (ग्राम स्वराज) पर आधारित विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के पक्षधर थे।
- प्रत्येक व्यक्ति को आंतरिक नैतिक शक्ति विकसित करनी चाहिए और सामूहिक कल्याण के लिए स्वेच्छा से सहयोग करना चाहिए।
- उनका तर्क था कि सच्ची प्रगति आत्म-संयम, अहिंसा और सत्य से आती है, न कि राज्य द्वारा थोपी गई एकरूपता से।

आधुनिक शासन के लिए प्रासंगिकता

- आधुनिक लोकतंत्रों में, गांधीजी की चेतावनी हमें याद दिलाती है कि अति-नियमन और नौकरशाही नवाचार और नागरिक भागीदारी को बाधित कर सकते हैं।
- लक्ष्य राज्य में सत्ता केंद्रित करने के बजाय व्यक्तियों और समुदायों को सशक्त बनाना होना चाहिए।

निष्कर्ष: गांधीजी का कथन एक न्यायपूर्ण समाज के आधार के रूप में व्यक्तिगत नैतिक स्वायत्तता में उनके विश्वास को रेखांकित करता है। व्यक्तित्व का दमन करने वाला राज्य व्यवस्था सुनिश्चित कर सकता है, लेकिन रचनात्मकता, स्वतंत्रता और सच्ची मानवीय प्रगति की कीमत पर।

प्र. "राज्य का बहुलवादी सिद्धांत" पर टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: राज्य का बहुलवादी सिद्धांत सी. राइट मिल्स द्वारा प्रस्तावित अभिजात्य सिद्धांत की आलोचना के रूप में उभरा। बहुलवादी सिद्धांत की मूलभूत विशेषता यह है कि राज्य, किसी एक पूंजीवादी वर्ग या अभिजात वर्ग के वर्चस्व के बजाय, विभिन्न हित समूहों द्वारा शासित होता है।

- **रॉबर्ट डाहल ने** अपने लेख 'हू गवर्नेस अमेरिका' में सीडब्ल्यू मिल्स के सत्ता के अभिजात्य दृष्टिकोण पर हमला करते हुए बहुलवादी राज्य की अवधारणा पेश की। डाहल का मानना है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का शासन संघीय राजनेताओं जैसे राजनीतिक अभिजात वर्ग द्वारा नहीं, बल्कि धार्मिक संगठनों, कॉर्पोरेट लॉबी और नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं सहित कई हित समूहों द्वारा किया जाता है। उन्होंने अपने बहुलवादी राज्य प्रतिमान को "बहुशासन" के रूप में संदर्भित किया।
- **चार्ल्स लिंडब्लोम** के साथ अपने सहयोग में, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जबकि कई हित समूह नीति-निर्माण निर्णयों को प्रभावित करते हैं, व्यवसाय और उद्यमी समूह सबसे शक्तिशाली हैं। डाहल ने इस नई अवधारणा को **"विकृत बहुशासन"** के रूप में संदर्भित किया।

3

न्याय

प्र. रॉल्स ने वितरणात्मक न्याय की अपनी अवधारणा को विकसित करने के लिए उदारवादी और समतावादी दृष्टिकोण का किस प्रकार उपयोग किया है? व्याख्या कीजिए।(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: जॉन रॉल्स ने अपनी मौलिक कृति "न्याय का सिद्धांत" (1971) में उदारवादी और समतावादी विचारों को मिलाकर सामाजिक और आर्थिक वितरण की एक निष्पक्ष प्रणाली का प्रस्ताव रखा है। उनके सिद्धांत को "निष्पक्षता के रूप में न्याय" कहा जाता है। यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समानता के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है।

- **उदारवादी आधार - व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रधानता:** रॉल्स इस उदारवादी सिद्धांत का समर्थन करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के समान अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। उनका मानना है कि न्याय को व्यक्तिगत स्वायत्तता की रक्षा करनी चाहिए और बहुसंख्यकों के अत्याचार को रोकना चाहिए। न्याय का पहला सिद्धांत सभी नागरिकों के लिए समान बुनियादी स्वतंत्रताओं-अभिव्यक्ति, विवेक, राजनीतिक भागीदारी और व्यक्तिगत संपत्ति की स्वतंत्रता-की गारंटी देता है।
- **समतावादी आधार-संसाधनों का निष्पक्ष वितरण:** रॉल्स सामाजिक और प्राकृतिक कारकों से उत्पन्न असमानताओं को दूर करने के लिए एक समतावादी आयाम प्रस्तुत करते हैं।

न्याय का उनका दूसरा सिद्धांत आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दो भागों में संबोधित करता है:

- **अवसर की निष्पक्ष समानता:** जन्म या वर्ग की परवाह किए बिना, सभी को सामाजिक पदों तक वास्तविक पहुँच होनी चाहिए।
- **अंतर सिद्धांत:** असमानताएँ तभी उचित हैं जब वे समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त सदस्यों को लाभान्वित करें।
- **मूल स्थिति और अज्ञानता का पर्दा:** रॉल्स एक विचार प्रयोग का उपयोग करते हैं जहाँ व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति, धन या प्रतिभा से अनभिज्ञ होकर, "अज्ञानता के परदे" के पीछे न्याय के सिद्धांतों का चयन करते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि चुने गए सिद्धांत निष्पक्ष हों, क्योंकि कोई भी किसी विशिष्ट समूह के पक्ष में व्यवस्था नहीं बनाएगा।
- **वितरणात्मक न्याय परिणाम:** उदारवाद के स्वतंत्रता पर जोर को निष्पक्षता और समानता के लिए समतावादी चिंता के साथ जोड़ता है। एक संतुलित सामाजिक व्यवस्था की तलाश करता है जहाँ स्वतंत्रता और समानता सह-अस्तित्व में हों।

निष्कर्ष: रॉल्स का वितरणात्मक न्याय का सिद्धांत एक न्यायसंगत और मानवीय समाज की कल्पना करता है जो व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक समता दोनों को सुनिश्चित करता है, जिससे यह आधुनिक राजनीतिक दर्शन की आधारशिला बन जाता है।

प्र. रॉल्स के 'उदार स्व' का विचार बहुत अधिक व्यक्तिवादी है। इस सन्दर्भ में रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की समुदायवादी आलोचना को स्पष्ट कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तर: रॉल्स की 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' ने हाल के दिनों में राजनीतिक दर्शन की मानक प्रवृत्ति को पुनर्जीवित किया है। 20वीं सदी में रॉल्स ने अपनी प्रसिद्ध रचना "थ्योरी ऑफ जस्टिस" में न्याय की संकल्पना को पुन: राजनीतिक चिंतन के केंद्र में स्थापित किया था।

- रॉल्स का उद्देश्य विशुद्ध प्रक्रियात्मक पद्धति पर आधारित न्याय के सार्वभौमिक सिद्धांतों का निर्माण करना था। हालांकि, यह पद्धति उदारवाद पर आधारित है, जो व्यक्तिवाद को तर्क के केंद्र में रखती है।
- रॉल्स के अनुसार, न्याय समाज का केंद्रीय सद्गुण है। न्याय के नियमों का निर्माण मानवीय समाज द्वारा किया गया है, अत: न्याय मानव के तार्किक चयन का परिणाम है।

रॉल्स के न्याय का क्रमिक रूप

- **समान स्वतंत्रता**
- **अवसर की समानता**
- **विभेद का नियम**

- माइकल सैंडल और अलास्डेयर मैकइंटायर जैसे साम्यवादी विचारकों का तर्क है कि रॉल्स का सिद्धांत सांप्रदायिक मूल्यों, साझा परंपराओं और सांस्कृतिक संदर्भों के महत्व को कम करते हुए 'व्यक्तिगत स्व' (Individual Self) पर बहुत अधिक जोर देता है।
- रॉल्स ने अपने सिद्धांत की शुरुआत एक काल्पनिक स्थिति से की है जहां व्यक्ति 'अज्ञानता के पर्दे' (Veil of Ignorance) के पीछे, न्याय के सिद्धांतों के बारे में तर्कसंगत विकल्प चुनते हैं। इस स्थिति में व्यक्ति को अपनी प्रतिभा व क्षमता का ज्ञान नहीं था और भविष्य में समाज में उसकी स्थिति क्या होगी, उसके विषय में भी उसे ज्ञान नहीं था। अत: इस स्थिति में जब व्यक्तियों ने परस्पर समझौता करके न्यायपूर्ण समाज के निर्माण का प्रयत्न किया तो उन्होंने स्वयं की स्थिति को सबसे वंचित रूप में देखा।
- रॉल्स के न्याय सिद्धांत को अधिकतम-न्यूनतम सिद्धांत भी कहते हैं, जिसका अभिप्राय है, समाज में न्यूनतम स्थिति में रहने वाले लोगों के लिए अधिकतम लाभ।
- रॉल्स का प्रसिद्ध कथन ''आत्म उन 'साध्यों' से पहले है जिनकी पुष्टि इसके द्वारा की जाती है'' (the self is prior to the ends

4

समानता

प्र. कार्ल पौपर खुले समाज की अपनी दुश्मनों के खिलाफ एक बचाव प्रस्तुत करते हैं। विस्तार से बताइए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: कार्ल पौपर ने अपनी पुस्तक "द ओपन सोसाइटी एंड इट्स एनिमीज" (1945) में फासीवाद और साम्यवाद जैसी अधिनायकवादी विचारधाराओं के विरुद्ध उदार लोकतंत्र और तर्कसंगत व्यक्तिवाद का बचाव किया है। वह "खुले समाज" की नींव के रूप में स्वतंत्रता, आलोचनात्मक सोच और लोकतांत्रिक शासन पर जोर देते हैं।

- **खुले समाज की अवधारणा:** एक खुला समाज व्यक्तियों को सत्ता पर सवाल उठाने, विविध विचार व्यक्त करने और निर्णय लेने में स्वतंत्र रूप से भाग लेने की अनुमति देता है। यह हठधर्मिता या परंपरा की तुलना में तर्क, प्रमाण और बहस को अधिक महत्व देता है। कानून और संस्थाएँ तर्कसंगत आलोचना के माध्यम से सुधार के लिए खुली हैं।
- **बंद समाज के साथ तुलना:** एक बंद समाज कठोर पदानुक्रम, सामूहिक अनुरूपता और निर्विवाद परंपराओं पर आधारित होता है। यह स्थिरता और नियंत्रण के पक्ष में व्यक्तित्व और असहमति को दबा देता है। उदाहरणों में अधिनायकवादी शासन शामिल हैं जो "पूर्ण सत्य" होने का दावा करते हैं।
- **ज्ञानमीमांसीय आधार:** पॉपर का तर्क है कि मानव ज्ञान त्रुटिपूर्ण है; कोई भी विचार या विचारधारा अंतिम नहीं है। इसलिए, समाजों को आलोचना और परिवर्तन के लिए खुला रहना चाहिए। उन्होंने मिथ्याकरणीयता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया - यह विचार कि सत्य को हमेशा परीक्षण योग्य और संशोधित किया जा सकता है।

दार्शनिक शत्रुओं की आलोचना

- **प्लेटो:** एक कठोर, पदानुक्रमित प्दार्शनिक-राजाष मॉडल का समर्थन किया-जो स्वतंत्रता के प्रति शत्रुतापूर्ण था।
- **हेगेल:** राज्य और इतिहास को निरंकुश शक्तियों के रूप में महिमामंडित किया।
- **मार्क्स:** ऐतिहासिक नियतिवाद को बढ़ावा दिया, व्यक्तिगत एजेंसी को कम किया।

पॉपर का विकल्प - टुकड़ों में सामाजिक इंजीनियरिंग

- क्रांतिकारी उथल-पुथल के बजाय, लोकतांत्रिक तरीकों से क्रमिक सुधार की वकालत करता है। जवाबदेही, तर्कसंगत नीति-निर्माण और शांतिपूर्ण परिवर्तन पर जोर देता है।

निष्कर्ष: पॉपर का खुला समाज व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लोकतंत्र और आलोचनात्मक तर्कवाद का बचाव करता है। इसके लिए सबसे बड़ा खतरा उन हठधर्मी विचारधाराओं से है जो आलोचना को अस्वीकार करती हैं और पूर्ण निश्चितता चाहती हैं।

प्र. "व्यक्तिगत ही राजनीतिक है"। यह नारा किस प्रकार से महिलाओं के शोषण और भेदभाव को संसूचित करता है? वर्णन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: "व्यक्तिगत ही राजनीतिक है" का नारा 1960 और 1970 के दशक के द्वितीय-तरंग नारीवादी आंदोलन के दौरान उभरा। नारीवादी विचारक कैरोल हैनिश द्वारा लोकप्रिय इस नारे ने इस विचार को चुनौती दी कि महिलाओं के व्यक्तिगत अनुभव निजी होते हैं और राजनीति से अलग होते हैं।

मूल विचार

- नारा इस बात पर जोर देता है कि व्यक्तिगत जीवन-पारिवारिक भूमिकाएँ, घरेलू काम, कामुकता और रिश्ते-समाज की सत्ता संरचनाओं से गहराई से प्रभावित होते हैं।
- जो एक व्यक्तिगत या निजी समस्या प्रतीत होती है (जैसे घरेलू हिंसा या अवैतनिक देखभाल कार्य) वास्तव में प्रणालीगत लैंगिक असमानता में निहित है।

पारंपरिक राजनीति की आलोचना

- पारंपरिक राजनीतिक सिद्धांत ने राजनीति को सार्वजनिक क्षेत्रों-राज्य, कानून और अर्थव्यवस्था-तक सीमित कर दिया, जिसमें घर-परिवार शामिल नहीं था।
- नारीवादियों का तर्क था कि पितृसत्ता निजी क्षेत्र में सबसे मजबूती से काम करती है, जिससे महिलाओं की अधीनता अदृश्य हो जाती है और कानूनों या नीतियों द्वारा इसका समाधान नहीं किया जाता।

उत्पीड़न की संरचनाओं का पर्दाफाश

- इस नारे ने यह उजागर करने में मदद की कि कैसे घरेलू श्रम, बच्चों की देखभाल और भावनात्मक कार्य-जो ज्यादातर महिलाओं द्वारा किए जाते हैं-सार्वजनिक अर्थव्यवस्था को सहारा देते हैं, लेकिन फिर भी उन्हें कम आंका जाता है और उनका भुगतान नहीं किया जाता।
- इसने घरेलू हिंसा, वैवाहिक बलात्कार और प्रजनन अधिकारों को निजी पारिवारिक मामलों के बजाय राजनीतिक मुद्दों के रूप में उजागर किया, जिनमें राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

समानता और नीति परिवर्तन की माँग

- नारीवादियों ने इस विचार का इस्तेमाल कानूनी सुधारों के लिए किया-जैसे घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, मातृत्व लाभ और समान वेतन संबंधी कानून।

5

अधिकार

प्र. मानवाधिकारों पर बहस सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद दोनों की सीमाओं के बीच फंसी हुई है। टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: मानवाधिकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मौलिक अधिकार और स्वतंत्रता हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए अंतर्निहित हैं, चाहे उनकी राष्ट्रीयता, लिंग, जातीयता, धर्म या कोई अन्य स्थिति कुछ भी हो। इन अधिकारों में नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार शामिल हैं, जिनमें जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार शामिल है। मानवाधिकारों को संयुक्त राष्ट्र चार्टर जैसे अंतरराष्ट्रीय और राज्य कानूनी ढांचों द्वारा सुरक्षित किया जाता है।

सार्वभौमिकता बनाम सांस्कृतिक सापेक्षवाद

- मानवाधिकारों पर चर्चा सार्वभौमिक मानवाधिकारों और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के बीच एक मौलिक विरोधाभास द्वारा चिह्नित है। **"यूनिवर्सल ह्यूमन राइट्स इन थ्योरी एंड प्रैक्टिस" (2013)** में, **जैक डोनेली** तर्क देते हैं कि यद्यपि मानवाधिकारों में एक सार्वभौमिक वैचारिक ढांचा होता है, लेकिन उनके अनुप्रयोग में सांस्कृतिक अंतरों पर विचार किया जाना चाहिए, जो एक "सापेक्ष सार्वभौमिकता" की वकालत करता है जो सार्वभौमिक सिद्धांतों और स्थानीय संदर्भों दोनों को स्वीकार करता है।
- **"ह्यूमन राइट्स: ए पॉलिटिकल एंड कल्चरल क्रिटीक" (2002)** में, मकाऊ मुटुआ सार्वभौमिक मानवाधिकारों के पश्चिम-केंद्रित दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं, उनका तर्क है कि मौजूदा मानवाधिकार ढांचा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का प्रतीक है। उनका तर्क है कि मानवाधिकारों की **सार्वभौमिक घोषणा** मुख्य रूप से पश्चिमी उदार विचारों को दर्शाती है और मानव गरिमा और सामाजिक निष्पक्षता पर विभिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को अपर्याप्त रूप से समाहित कर सकती है।
- **अब्दुल्लाही अन-नईम ने "ह्यूमन राइट्स इन क्रॉस-कल्चरल परस्पेक्टिव्स" (1992)** में इस परिप्रेक्ष्य पर विस्तार से चर्चा की है, तथा तर्क दिया है कि मानव अधिकारों के अनुप्रयोग के लिए सांस्कृतिक वैधता आवश्यक है तथा प्रभावोत्पादकता प्राप्त करने के लिए सार्वभौमिक सिद्धांतों को स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं में निहित होना चाहिए।
- **"व्हाट आर ह्यूमन राइट्स?" (2010)** में, मैरी-बेनेडिक्ट डेम्बोर ने मानवाधिकारों के बारे में चार प्रमुख विचारधाराओं को रेखांकित करते हुए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है: प्राकृतिक, जानबूझकर, विरोध और विवादास्पद विचारधाराएं। वह बताती हैं कि कैसे ये विभिन्न वैचारिक ढाँचे संस्कृतियों में मानवाधिकारों की समझ और कार्यान्वयन में अंतर्निहित विरोधाभास उत्पन्न करते हैं।
- **"डेवलपमेंट ऐज फ्रीडम" (1999)** में अमर्त्य सेन लिखते हैं कि मानव अधिकार और सांस्कृतिक मूल्य स्वाभाविक रूप से विरोधाभासी नहीं हैं। उनका मानना है कि सभी संस्कृतियों में ऐसी परंपराएं होती हैं जो आवश्यक मानवीय स्वतंत्रता को बनाए रखती हैं, हालांकि उन्हें अलग-अलग तरीकों से व्यक्त किया जाता है।
- **रोडा हॉवर्ड-हसमैन ने "यूनिवर्सल विमेन राइट्स" (2011)** में छठा रुख प्रस्तुत करते हुए कहा कि हालांकि सांस्कृतिक संवेदनशीलता महत्वपूर्ण है, लेकिन मानवाधिकार ढांचे की अखंडता को बनाए रखने के लिए कुछ मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए। वह महिलाओं के अधिकारों के संबंध में इस बात को विशेष रूप से रेखांकित करती हैं, क्योंकि सांस्कृतिक सापेक्षवाद को कभी-कभी भेदभाव को तर्कसंगत बनाने के लिए नियोजित किया जाता है।

मानवाधिकारों में सार्वभौमिकता और सांस्कृतिक सापेक्षवाद के बीच संघर्ष केवल द्विआधारी विरोध नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करने और मानव गरिमा के आवश्यक मानदंडों को कायम रखने के बीच एक बहुआयामी आधार है।

प्र. अधिकारों का बहुसांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तर: बहुसंस्कृतिवादियों ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों का समर्थन करते हुए उदारवादी स्वायत्त एवं स्वतंत्र व्यक्ति की कल्पना को अस्वीकृत कर दिया, क्योंकि व्यक्ति, मूलत: संस्कृति व समुदाय का सदस्य होता है। राज्य द्वारा निर्मित विधियों पर संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ता है।

- बहुसंस्कृतिवादियों के अनुसार, राष्ट्र-राज्य में संस्कृति को संरक्षित करने की आवश्यकता होती है। इसलिए समाज में अल्पसंख्यकों की संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता है।
- विभेदकारी नागरिकता प्रस्तुत करते हुए बहुसंख्यकवादियों ने अल्पसंख्यकों के लिए तीन विशेष अधिकारों का समर्थन किया-

1) सांस्कृतिक अधिकार 2) स्वशासित सरकार का अधिकार
3) विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार

- चूंकि राज्य, बहुमत समुदाय की संस्कृति को प्रकट करता है। इसलिए अल्पसंख्यकों को सार्वजनिक जीवन में कुछ विशेष अधिकारों की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए कनाडा में सिक्खों ने हेलमेट पहनने की छूट देने की मांग की और कनाडाई सरकार ने उनकी मांग को स्वीकृत कर लिया, साथ ही कनाडा में एशियाई मूल की महिलाओं को भी नर्सों की निर्धारित पोशाक से छूट प्रदान की गई।

6

लोकतंत्र

प्र. लोकतंत्र के अभिजन सिद्धांत को संक्षेप में समझाइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: लोकतंत्र का अभिजन सिद्धांत यह मानता है कि वास्तविक सत्ता और निर्णय लेने की क्षमता जनता के बजाय समाज के एक छोटे, संगठित और प्रभावशाली वर्ग यानी अभिजनों (elites) के हाथों में रहती है।

- सामान्य जनता चुनावों के माध्यम से केवल नेताओं का चयन करती है, परंतु नीतियों और शासन की दिशा अभिजन ही तय करते हैं। मोस्का, पारेटो और मिशेल्स जैसे चिंतकों ने इसे स्पष्ट किया।
- मिशेल्स का "ओलिगार्की का लौह सिद्धांत" बताता है कि संगठन हमेशा कुछ नेताओं के नियंत्रण में आ जाते हैं। इस प्रकार, लोकतंत्र में भी सत्ता सीमित अभिजनों के हाथों केंद्रित रहती है।

प्र. विमर्शी लोकतंत्र नागरिकों के मध्य सार्वजनिक मुद्दों के संबंध में लोकतांत्रिक निर्णयन को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: विमर्शी लोकतंत्र एक ऐसा लोकतांत्रिक तंत्र है, जो निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में संवाद और विचार-विमर्श को प्राथमिकता देता है। इसमें नागरिक संवाद, चर्चा और विचार-विमर्श के माध्यम से सहमति तक पहुँचते हैं, ताकि निर्णय जानकारीपूर्ण, समावेशी और विविध दृष्टिकोणों एवं सामूहिक तर्कों का प्रतिनिधित्व करने वाले हों।

विमर्शी लोकतंत्र सार्वजनिक मुद्दों पर लोकतांत्रिक निर्णय लेने को कैसे प्रोत्साहित करता है?

- **जुर्गन हेबरमास** ने अपनी कृति **"बिटवीन फैक्ट्स एंड नॉर्म्स" (1996)** में लिखा है कि वैध कानून निर्माण नागरिकों के बीच सार्वजनिक चर्चा से उत्पन्न होता है, जिसमें तार्किक संवाद और संप्रेषणीय गतिविधि लोकतांत्रिक वैधता का आधार बनते हैं। उन्होंने तर्क दिया कि लोकतांत्रिक निर्णयों की वैधता स्वतंत्र और समान व्यक्तियों के बीच तर्कसंगत संवाद की प्रक्रिया से प्राप्त होती है।
- **एमी गुटमैन और डेनिस थॉम्पसन** ने अपनी कृति **"व्हाई डिलिबरेटिव डेमोक्रेसी?" (2004)** में इस अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि विचारशील लोकतंत्र प्रतिनिधि, प्रत्यक्ष और सहभागी जैसे लोकतंत्र के विभिन्न रूपों को समाहित करता है। उनका कहना है कि इसका मुख्य घटक यह है कि व्यक्तियों और उनके प्रतिनिधियों के लिए अपने विचारों को इस तरह से उचित ठहराना आवश्यक है, जो बाध्यकारी निर्णय प्राप्त करने के इच्छुक लोगों के लिए स्वीकार्य हों, और वे संवाद के लिए खुले रहें।
- **जेन मैन्सब्रिज** ने अपनी पुस्तक **"एवरीडे टॉक इन द डिलिबरेटिव सिस्टम"** (2012) में तर्क दिया है कि बहस केवल औपचारिक राजनीतिक संस्थानों में ही नहीं, बल्कि कई अन्य आपस में जुड़े सार्वजनिक क्षेत्रों में भी होती है। उन्होंने **विविध सामाजिक संदर्भों में अनौपचारिक चर्चाओं** के महत्व को रेखांकित किया, जो समग्र विचारशील प्रणाली को सशक्त बनाती हैं। इस दृष्टिकोण का समर्थन **सेला बेनहाबिब** ने अपनी कृति **"टुवर्ड्स अ डिलिबरेटिव मॉडल ऑफ डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी"** (1996) में किया। उन्होंने तर्क दिया कि लोकतांत्रिक वैधता सभी सामूहिक हितों के मुद्दों पर स्वतंत्र और निर्बाध सार्वजनिक विचार-विमर्श से उत्पन्न होती है।
- **जेम्स फिशकिन** ने अपनी पुस्तक **"डेमोक्रेसी व्हेन द पीपल आर थिंकिंग"** (2018) में विचारशील लोकतंत्र की प्रभावशीलता के लिए अनुभवजन्य प्रमाण प्रस्तुत किए। उन्होंने तर्क दिया कि जब व्यक्तियों को विरोधाभासी तर्कों का गहराई से मूल्यांकन करने का अवसर दिया जाता है, तो वे सटीक राजनीतिक निर्णय लेने में सक्षम होते हैं। उनका अध्ययन दर्शाता है कि संगठित विचारशील मंच अधिक जानकारीपूर्ण और विचारशील सार्वजनिक निर्णयों का परिणाम दे सकते हैं।
- **आईरिस मेरियन यंग** ने अपनी कृति **"इनक्लूजन एंड डेमोक्रेसी"** (2002) में एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने तर्क दिया कि विचारशील प्रक्रियाओं को सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक शैली में असमानताओं को मान्यता और स्थान देना चाहिए। उनका मानना है कि प्रभावी विचार-विमर्श के लिए न केवल तार्किक संवाद आवश्यक है, बल्कि विभिन्न संप्रेषण और अभिव्यक्ति के तरीकों को भी स्वीकार करना चाहिए, ताकि सभी नागरिक, उनकी पृष्ठभूमि या संवाद शैली की परवाह किए बिना, लोकतांत्रिक निर्णय-निर्माण में सार्थक रूप से भाग ले सकें।

इस प्रकार, विमर्शी लोकतंत्र नागरिकों के बीच समावेशी और विचारशील संवाद को बढ़ावा देकर लोकतांत्रिक निर्णय-निर्माण की गुणवत्ता और वैधता को सुधारने का प्रयास करता है। यह सहयोगी तर्क और सहमति निर्माण के महत्व को रेखांकित करता है, यह सुनिश्चित करते हुए कि सार्वजनिक निर्णय लोकतांत्रिक वैधता रखते हों और विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हों।

प्र. समकालीन लोकतंत्र की सफलता, राज्य द्वारा अपनी शक्ति को सीमित करने में निहित है। स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तर: आधुनिक लोकतंत्रों की सफलता निर्विवाद रूप से राज्य द्वारा अपने अधिकार पर लगाए गए प्रतिबंधों पर निर्भर है, जिसे आमतौर पर 'सीमित सरकार' के विचार के रूप में जाना जाता है। इस अवधारणा का समर्थन कई विद्वानों ने किया है, जिनमें जॉन स्टुअर्ट मिल, सी.बी. मैकफर्सन और अन्य शामिल हैं।

7 शक्ति, प्राधान्य, विचारधारा और वैधता की संकल्पना

प्र. शक्ति पर मैकफर्सन के दृष्टिकोण को समझाइये।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: मैकफर्सन का शक्ति संबंधी दृष्टिकोण उदारवादी लोकतंत्र और मार्क्सवादी विश्लेषण के मध्य सेतु का कार्य करता है। उन्होंने शक्ति को केवल राजनीतिक प्रभुत्व या दबाव का साधन न मानकर, मानव की क्षमताओं और संभावनाओं के विकास से जोड़ा।

- उनके अनुसार वास्तविक शक्ति वह है जो व्यक्ति और समुदाय को आत्म-विकास, सहभागिता और रचनात्मकता के अवसर प्रदान करे।
- पूँजीवादी व्यवस्था में शक्ति असमान रूप से वितरित होकर शोषण का कारण बनती है, जबकि लोकतांत्रिक समाज में शक्ति का उद्देश्य समान अवसर और सामूहिक कल्याण होना चाहिए।
- इस प्रकार मैकफर्सन शक्ति को मानवतावादी और नैतिक परिप्रेक्ष्य से व्याख्यायित करते हैं।

प्र. क्या आप मानते हैं कि सहमति से अर्जित वैधता अथवा मतारोपण से निर्मित वैधता राजनीतिक शासन को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक तत्व है? अपने उत्तर को उपयुक्त उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: वैधता का अर्थ है जनता द्वारा राजनीतिक सत्ता की स्वीकृति और औचित्य। यही वह चीज है जो शक्ति को सत्ता में बदल देती है। राजनीतिक शासन या तो जन सहमति (लोकतांत्रिक वैधता) से या फिर शिक्षा और चालाकी (सत्तावादी वैधता) से वैधता प्राप्त कर सकता है। दोनों ही रूप राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं, हालाँकि उनके नैतिक और संस्थागत आधार अलग-अलग होते हैं।

सहमति के माध्यम से वैधता

- लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में, वैधता शासितों की स्वतंत्र इच्छा और सहमति से उत्पन्न होती है।
- चुनाव, कानून का शासन, संविधानवाद और भागीदारी जैसे तंत्र सत्ता की स्वैच्छिक स्वीकृति सुनिश्चित करते हैं।
- जॉन लॉक और जीन-जैक्स रूसो जैसे सिद्धांतकारों ने तर्क दिया कि सरकारें सामाजिक अनुबंध के माध्यम से अस्तित्व में रहती हैं - लोग अधिकारों की सुरक्षा के बदले में शासित होने की सहमति देते हैं। उदाहरण: भारत, यूनाइटेड किंगडम या संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे उदार लोकतंत्रों में राजनीतिक शासन की वैध ता आवधिक चुनावों और नागरिक भागीदारी से प्रवाहित होती है।
- ऐसी वैधता टिकाऊ, जवाबदेह और स्व-सुधारात्मक होती है, जो राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करती है।

विचारधारा के माध्यम से वैधता

- सत्तावादी शासन में, वैधता अक्सर प्रचार, विचारधारा और सूचना पर नियंत्रण के माध्यम से निर्मित की जाती है।
- नागरिकों को शासन की धार्मिकता या अनिवार्यता में विश्वास करने के लिए तैयार किया जाता है।
- उदाहरण: हिटलर के अधीन नाजी जर्मनी और समकालीन उत्तर कोरिया, स्वतंत्र सहमति के बजाय वैचारिक विचारधारा और राष्ट्रवाद के माध्यम से वैधता प्राप्त करते हैं। हालाँकि यह अल्पावधि में प्रभावी होती है, लेकिन ऐसी वैधता नाजुक होती है, और अक्सर दबाव कम होने या असहमति के उभरने पर ढह जाती है।

निष्कर्ष: वैधता-चाहे वह वास्तविक हो या बनावटी-राजनीतिक शासन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। हालाँकि, स्वतंत्र सहमति पर आधारित वैधता स्थायी स्थिरता, नैतिक अधिकार और नागरिक विश्वास सुनिश्चित करती है, जबकि मनगढ़ंत वैधता भय और अंतत: प्रतिरोध को जन्म देती है। इसलिए, सच्ची राजनीतिक वैधता हेरफेर या जबरदस्ती के बजाय जनता की सहमति, जवाबदेही और सहभागी शासन पर आधारित होनी चाहिए।

प्र. "शक्ति तथा आधिपत्य के बीच संबंध" पर टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: राजनीति विज्ञान में, शक्ति का अर्थ है व्यक्तियों या संस्थाओं की दूसरों के कार्यों को प्रभावित करने और मनचाहा परिणाम प्राप्त करने, दबाव, अनुनय या अधिकार का उपयोग करने की क्षमता। यह विचार आधिपत्य से निकटता से जुड़ा हुआ है, हालांकि वे अलग-अलग तरीकों से काम करते हैं।

- राजनीतिक सिद्धांतकार **स्टीवन ल्यूक्स** द्वारा "थ्री फेसेज ऑफ पावर" का प्रतिमान इस संबंध को स्पष्ट करता है। प्रत्यक्ष शक्ति प्रत्यक्ष निर्णय लेने के माध्यम से कार्य करती है, जबकि आधिपत्य द्वितीयक और तृतीयक आयामों के माध्यम से कार्य करता है - एजेंडा का प्रबंधन करना और वरीयताओं को प्रभावित करना।
- **एंटोनियो ग्राम्स्की का** अध्ययन यह दर्शाता है कि आधिपत्य सांस्कृतिक और बौद्धिक वर्चस्व का सृजन करके साधारण सत्ता से आगे निकल जाता है, जिससे सत्ता की गतिशीलता स्वाभाविक और वैध प्रतीत होने लगती है।
- **मिशेल फौकॉल्ट की** शक्ति-ज्ञान की अवधारणा इस संबंध को स्पष्ट करती है। उनका तर्क है कि शक्ति केवल बल प्रयोग के माध्यम से ही नहीं बल्कि ज्ञान और सत्य की प्रणालियों के निर्माण के माध्यम से भी कार्य करती है।

8

राजनैतिक विचारधाराएं

प्र. इतालवी और जर्मन ब्रांडों के फासीवाद के बीच अंतर का उल्लेख कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: इतालवी और जर्मन फासीवाद में समानताएँ होते हुए भी स्पष्ट अंतर हैं। इतालवी फासीवाद (मुसोलिनी) राष्ट्रवाद, अधिनायकवाद और कॉर्पोरेट राज्य पर आधारित था, किंतु इसमें नस्लीय श्रेष्ठता पर उतना जोर नहीं था।

- इसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्र की एकता और रोमन साम्राज्य जैसी महाशक्ति की पुनर्स्थापना था। इसके विपरीत, जर्मन फासीवाद या नाजीवाद (हिटलर) ने चरमपंथी राष्ट्रवाद को नस्लवाद और यहूदी-विरोध के साथ जोड़ा।
- आर्य नस्ल की श्रेष्ठता और नस्ली शुद्धता इसके केंद्र में थी। इतालवी फासीवाद सत्ता-केन्द्रित था, जबकि जर्मन नाजीवाद नस्ली विचारधारा और विस्तारवादी युद्धवाद पर अधिक केंद्रित था।

प्र. राज्य का मार्क्सवादी और उदारवादी परिपेक्ष्य क्या है? दोनों के बीच सैद्धांतिक अंतर किस आधार पर स्थापित हैं? व्याख्या कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: उदारवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार राज्य एक तटस्थ और वैध संस्था है जो सामाजिक अनुबंध के आधार पर निर्मित हुई है। हाब्स, लॉक, मिल तथा बेंथम जैसे विचारकों ने इसे नागरिक स्वतंत्रता, संपत्ति और अधिकारों की सुरक्षा का साधन माना।

- शास्त्रीय उदारवाद में राज्य को "नाइट-वॉचमैन स्टेट" कहा गया, जिसका कार्य केवल सुरक्षा और कानून-व्यवस्था बनाए रखना है। आधुनिक उदारवाद ने राज्य की भूमिका का विस्तार कर इसे कल्याणकारी और नियामक स्वरूप दिया, ताकि समान अवसर और सामाजिक न्याय सुनिश्चित हो सके। उदारवादी दृष्टि में राज्य लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व, बहुलवाद और विधि के शासन का संरक्षक है।
- इसके विपरीत, मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य राज्य को तटस्थ न मानकर वर्ग-शोषण का उपकरण मानता है। मार्क्स और एंगेल्स ने कहा कि राज्य अधिरचना (superstructure) का हिस्सा है, जो आर्थिक आधार (mode of production) से निर्धारित होता है।
- पूँजीवादी व्यवस्था में राज्य शासक वर्ग यानी बुर्जुआ के हितों की रक्षा करता है और उत्पादन संबंधों को बनाए रखता है। लोकतंत्र और कानून की आड़ में यह व्यवस्था श्रमिक वर्ग के शोषण को वैध ठहराती है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण में राज्य अस्थायी है; वर्ग संघर्ष की परिणति समाजवाद और अंततः साम्यवाद में होगी, जहाँ राज्य का "क्षय" (withering away of the state) हो जाएगा।

सैद्धांतिक अंतर के आधार

- **राज्य की प्रकृति**
  - **उदारवादी:** तटस्थ, मध्यस्थ और अधिकारों का संरक्षक।
  - **मार्क्सवादी:** शासक वर्ग का उपकरण, असमानता को स्थायी करने वाला।
- **वैधता का स्रोत**
  - **उदारवादी:** जन-सहमति और सामाजिक अनुबंध।
  - **मार्क्सवादी:** भौतिक परिस्थितियाँ; वैधता केवल विचारधारात्मक मुखौटा।
- **उद्देश्य**
  - **उदारवादी:** स्वतंत्रता, संपत्ति और कल्याण की रक्षा।
  - **मार्क्सवादी:** वर्ग प्रभुत्व बनाए रखना, जब तक क्रांति न हो।
- **राज्य का भविष्य**
  - **उदारवादी:** स्थायी संस्था के रूप में निरंतर आवश्यक।
  - **मार्क्सवादी:** वर्गहीन समाज में राज्य का अंत।

निष्कर्ष: अतः उदारवादी दृष्टि राज्य को आवश्यक और वैध संस्था मानती है, जबकि मार्क्सवादी दृष्टि इसे ऐतिहासिक और शोषणकारी संरचना के रूप में देखती है। यह अंतर उनके मानव संबंधों की व्याख्या पर आधारित हैख़उदारवाद में व्यक्तिगत अधिकार और बहुलवाद, जबकि मार्क्सवाद में वर्ग-संघर्ष और आर्थिक नियतिवाद।

प्र. "उदारवाद के पतन" पर टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: राजनीति विज्ञान में उदारवाद एक ऐसा सिद्धांत है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक शासन और न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप को बढ़ावा देता है। **जॉन लॉक**, जिन्हें अक्सर उदारवाद के जनक के रूप में स्वीकार किया जाता है, ने **जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति** के प्राकृतिक अधिकारों को रेखांकित किया और तर्क दिया कि सरकार का कार्य इन अधिकारों की रक्षा करना है। लॉक के **"टू ट्रीटीज ऑफ गवर्नमेंट"** ने समकालीन उदार लोकतंत्रों की नींव रखी।

- **नवउदारवाद** के उदय ने बाजार-केंद्रित नीतियों पर जोर दिया, जिससे सामाजिक निष्पक्षता खत्म हो गई। **वैश्वीकरण** ने आर्थिक असमानताओं और सांस्कृतिक संघर्षों को जन्म दिया है, जिससे सार्वभौमिक आदर्शों की उदारवादी धारणा कमजोर हुई है।
- **लोकलुभावनवाद और अधिनायकवाद** ने गति पकड़ी है, उदारवादी अभिजात वर्ग की निंदा की है और राष्ट्रवाद की वकालत की है। इसके अलावा, उत्तर आधुनिकतावाद ने सार्वभौमिक सत्य और तर्क को चुनौती दी है जिस पर उदारवाद निर्भर था, जिसके परिणामस्वरूप वैचारिक आम सहमति का विघटन हुआ।

9

भारतीय राजनैतिक चिंतन

प्र. धर्मशास्त्र व्यक्तियों और समुदायों के लिए कर्तव्य केन्द्रित विश्व दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: धर्मशास्त्र एक विस्तृत कर्तव्य-केंद्रित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो जटिल दायित्वों और जिम्मेदारियों की प्रणाली के माध्यम से व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन को व्यवस्थित करता है। **"धर्मसूत्राज: द लॉ कोड्स ऑफ एंशिएंट इंडिया"** में **पैट्रिक ओलिवेल** स्पष्ट करते हैं कि धर्म केवल धार्मिक कर्तव्य का संकेत नहीं करता, बल्कि इसमें सामाजिक, नैतिक और कानूनी दायित्व भी शामिल हैं, जो ब्रह्मांडीय और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं। दायित्व की यह व्यापक धारणा व्यक्तिगत नैतिकता से आगे बढ़कर सामुदायिक समरसता को समाहित करती है।

व्यक्तियों और समुदायों के लिए कर्तव्य-केंद्रित दृष्टिकोण पर विविध विद्वतापूर्ण दृष्टिकोण

- **"द स्पिरिट ऑफ हिंदू लॉ"** में **डोनाल्ड डेविस** जूनियर बताते हैं कि धर्मशास्त्र सामाजिक संबंधों के संदर्भ में कर्तव्यों को परिभाषित करता है। वे यह तर्क देते हैं कि प्रत्येक सामाजिक स्थिति विशिष्ट दायित्वों को समाहित करती है, जो व्यक्ति की पहचान से अंतर्निहित रूप से जुड़ी होती हैं। वे उदाहरण देते हैं, जैसे **राजा का अपने प्रजाजनों की रक्षा करना,** शिक्षक का ज्ञान को सही ढंग से प्रदान करना, और बच्चों का अपने वृद्ध माता-पिता की देखभाल करना। इन जिम्मेदारियों को ऐच्छिक नैतिक निर्णय नहीं, बल्कि सामाजिक और ब्रह्मांडीय व्यवस्था बनाए रखने के लिए मौलिक तत्व माना गया।
- **वेंडी डोनिगर** अपनी पुस्तक **"द लॉज ऑफ मनु"** में इस बात पर जोर देती हैं कि मनुस्मृति जीवन के विभिन्न चरणों (आश्रम) और सामाजिक वर्गों (वर्ण) से संबंधित जिम्मेदारियों को परिभाषित करती है। वह कहती हैं कि गृहस्थ के कर्तव्यों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया, क्योंकि वे बलिदान, दान, और पारिवारिक वंश को बनाए रखने की अपनी प्रतिबद्धताओं के माध्यम से पूरे सामाजिक ढांचे को स्थिर बनाए रखते थे।
- **"हिंदू लॉ: बियॉन्ड ट्रेडिशन एंड मॉडर्निटी"** में **वर्नर एफ. मेन्स्की** धार्मिक दायित्वों के लचीलेपन पर बल देते हैं। वे कहते हैं कि धर्मशास्त्र ने दायित्वों के स्थान (देश), समय (काल), और व्यक्ति (पात्र) के अनुसार संदर्भात्मक अनुप्रयोग की आवश्यकता को स्वीकार किया। यह अनुकूलनशीलता बुनियादी सिद्धांतों के संरक्षण को संभव बनाती है। उनके लेखन में यह भी चर्चा होती है कि संकट (आपद धर्म) के समय में जिम्मेदारियों को कैसे बदला जा सकता है, जबकि नैतिक प्रतिबद्धताओं को बनाए रखा जाता है।
- **स्टेफनी जैमिसन** अपनी पुस्तक **"द रेवेनस हायनास एंड द वूंडेड सन"** में धर्मशास्त्र में धार्मिक कार्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों के एकीकरण को प्रदर्शित करती हैं। उनका अध्ययन दिखाता है कि कैसे खाना पकाने और खाने जैसे दैनिक क्रियाकलापों को भी धार्मिक महत्व से जोड़ा गया, जिससे दैनिक जीवन धार्मिक दायित्वों की निरंतर अभिव्यक्ति बन गया। इस दायित्वों के नेटवर्क ने एक ऐसा दृष्टिकोण स्थापित किया, जिसमें व्यक्तिगत गतिविधियों को हमेशा उनके व्यापक सामाजिक और ब्रह्मांडीय परिणामों से जोड़ा गया।

धर्मशास्त्र एक कर्तव्य-केंद्रित दृष्टिकोण की वकालत करता है, जो व्यक्तियों और समाज के लिए नैतिक दायित्वों को रेखांकित करता है। यह ब्रह्मांडीय सिद्धांतों को सामाजिक संरचना के साथ एकीकृत करता है, सदाचारी व्यवहार और सामुदायिक संतुलन का निर्देशन करता है। आध्यात्मिक और व्यावहारिक आयामों को संतुलित करते हुए, धर्मशास्त्र भारतीय राजनीतिक चिंतन में सांस्कृतिक और कानूनी मानकों के गठन पर आज भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

प्र. मानवेन्द्रनाथ रॉय ने अपने राजनीतिक विचारों में मार्क्सवाद के मानवतावादी पहलुओं को विशिष्ट रूप से दर्शाया है। विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: मार्क्सवाद के मानवतावादी आयाम मानव क्षमता की मुक्ति और विकास पर बल देते हैं, जिसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता, रचनात्मकता, और आत्म-सिद्धि को प्राथमिकता दी जाती है। कार्ल मार्क्स ने इन अवधारणाओं को अपनी प्रारंभिक रचनाओं, विशेष रूप से **"इकोनॉमिक एंड फिलॉसॉफिक मैन्यूस्क्रिप्ट्स ऑफ 1844"** में व्यक्त किया, जहाँ उन्होंने पराएपन (alienation) और मानव आवश्यकताओं की पूर्ति की चर्चा की।

रॉय का मार्क्सवाद के मानवतावादी पहलुओं पर जोर

- मानवेन्द्रनाथ रॉय का राजनीतिक चिंतन मार्क्सवादी विश्लेषण और मानवतावादी दर्शन का एक अद्वितीय समन्वय है, जो मार्क्सवाद का एक मानवतावादी दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन प्रदान करता है। **"रेडिकल ह्यूमैनिज्म" में वी.एम. तारकुंडे** ने स्पष्ट किया है कि रॉय की **"न्यू ह्यूमैनिज्म"** की अवधारणा ने मार्क्सवाद के मुक्तिकारी सार को बनाए रखने का प्रयास किया, जबकि इसके नियतात्मक (deterministic) पहलुओं को खारिज किया।

10 पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन

प्र. लॉक की संविधानवाद, स्वतंत्रता और संपत्ति की अवधारणा से पश्चिमी लोकतंत्र को आकार दिया गया है। वर्णन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: जॉन लॉक (1632-1704), जिन्हें अक्सर "उदारवाद का जनक" कहा जाता है, ने पश्चिमी लोकतंत्र की दार्शनिक और संस्थागत नींव को गहराई से प्रभावित किया। उनके राजनीतिक विचारों ने, विशेष रूप से "टू ट्रीटिसेज ऑफ गवर्नमेंट" में, संवैधानिक शासन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजी संपत्ति के अधिकारों की नींव रखी।

संविधानवाद

- लॉक ने निरंकुश राजतंत्र और राजाओं के दैवीय अधिकार के विचार को अस्वीकार किया।
- उन्होंने प्रस्तावित किया कि राजनीतिक सत्ता शासितों की सहमति से प्राप्त होनी चाहिए।
- सामाजिक अनुबंध वैध सरकार का आधार बनता हैख्नागरिक अपने अधिकारों की सुरक्षा के बदले स्वेच्छा से कुछ स्वतंत्रताएँ त्याग देते हैं।
- यह विचार आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्रों का आधार है, जहाँ सरकार की शक्तियाँ कानून द्वारा सीमित होती हैं और जवाबदेही के अधीन होती हैं।
- उनके सिद्धांतों ने अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों, और कानून के शासन और शक्तियों के पृथक्करण पर जोर देने वाले संवैधानिक ढाँचों को प्रेरित किया।

स्वतंत्रता (लिबर्टी)

- लॉक प्राकृतिक अधिकारों-जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति-को अंतर्निहित और अविभाज्य मानते थे।
- सरकार का मुख्य उद्देश्य इन अधिकारों की रक्षा करना है, न कि उन्हें कम करना।
- उन्होंने अंत:करण की स्वतंत्रता, धार्मिक सहिष्णुता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता-उदार लोकतंत्र की आधारशिलाओं-की वकालत की।
- उनके विचारों ने नागरिक स्वतंत्रता की आधुनिक अवधारणाओं और पश्चिमी संविधानों में अधिकारों के विधेयक की परंपराओं को आकार दिया।

संपत्ति

- लॉक ने संपत्ति को व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विस्तार माना-व्यक्ति अपने श्रम के फल का स्वामी होता है।
- संपत्ति अधिकार पूंजीवादी और लोकतांत्रिक समाजों की नींव बन गए, जिससे आर्थिक स्वतंत्रता सुनिश्चित हुई और राज्य की मनमानी शक्ति सीमित हुई।
- निजी संपत्ति का संरक्षण पश्चिमी लोकतांत्रिक ढाँचों में एक प्रमुख तत्व बना हुआ है।

निष्कर्ष:

- लॉक के संविधानवाद, स्वतंत्रता और संपत्ति के संश्लेषण ने पश्चिमी लोकतंत्रों के लिए एक नैतिक और संस्थागत खाका तैयार किया।
- उनकी दृष्टि आधुनिक उदार संविधानवाद का मार्गदर्शन करती है, जिसमें सीमित सरकार, व्यक्तिगत अधिकारों और कानून के शासन को लोकतंत्र का सार बताया गया है।

प्र. हन्ना आरेंन्ट ने विटा एक्टिवा की कुछ श्रेणियों का विश्लेषण किया। स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: प्रख्यात राजनीतिक सिद्धांतकार, हन्ना आरेंन्ट (1906-1975) ने अपनी मौलिक कृति "द ह्यूमन कंडीशन" (1958) में, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में मानवीय गतिविधियों की प्रकृति को समझने के लिए "विटा एक्टिवा" (सक्रिय जीवन) की अवधारणा का विश्लेषण किया। उन्होंने तीन मूलभूत मानवीय गतिविधियों-श्रम, कार्य और क्रिया-की पहचान की, जिनमें से प्रत्येक मानव अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती है और सार्वजनिक जीवन में विशिष्ट योगदान देती है।

श्रम

- जैविक अस्तित्व और जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक गतिविधियों को संदर्भित करता है (जैसे, खाद्य उत्पादन, घरेलू काम)।
- यह चक्रीय और दोहरावदार है, शारीरिक आवश्यकताओं और उपभोग की प्रक्रिया से प्रेरित है।
- श्रमिक का जीवन आवश्यकता और प्रकृति से बंधा होता है; यह स्थायी मूल्य उत्पन्न नहीं करता।
- आरेंन्ट ने इसे पशु श्रम से जोड़ा, और मानवता की भौतिक आवश्यकताओं पर निर्भरता पर प्रकाश डाला।

कार्य:

- टिकाऊ वस्तुओं-औजारों, इमारतों, संस्थाओं-के निर्माण को दर्शाता है जो एक स्थिर मानव जगत का निर्माण करते हैं।
- कार्य प्रकृति से अलग स्थायित्व के एक कृत्रिम क्षेत्र को जन्म देता है।
- कार्यकर्ता, या होमो फैबर, उद्देश्यपूर्ण सृजन और साधनात्मक तर्क के माध्यम से वास्तविकता को आकार देता है।
- यह सभ्यता की भौतिक नींव रखते हुए, डिजाइन, योजना और विश्व-निर्माण की मानवीय क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है।

भारतीय शासन एवं राजनीति

1 भारतीय राष्ट्रवाद

प्र. 1857 के पश्चात् और स्वतंत्रता से पहले के किसान आंदोलनों की भूमिका को संक्षेप में समझाइए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: 1857 के विद्रोह के बाद, भारत भर के किसानों ने औपनिवेशिक शोषण, उच्च भू-राजस्व और दमनकारी जमींदारों के विरुद्ध अनेक आंदोलन चलाए। इन आंदोलनों ने बढ़ती ग्रामीण चेतना को प्रतिबिंबित किया और राष्ट्रवादी संघर्ष में योगदान दिया।

- बंगाल में नील विद्रोह (1859-60) ने जबरन नील की खेती का विरोध किया और इसके उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त किया।
- महाराष्ट्र में दक्कन दंगे (1875) साहूकारों के शोषण के विरुद्ध हुए। मदन मोहन मालवीय और अन्य के नेतृत्व में किसान सभा आंदोलन (1918 से आगे) ने जमींदारी उत्पीड़न के विरुद्ध किसानों को संगठित किया।
- सरदार पटेल के नेतृत्व में एका (1921) और बारदोली सत्याग्रह (1928) जैसे आंदोलनों ने किसान मुद्दों को अहिंसा के गांधीवादी तरीकों के साथ एकीकृत किया।
- तेभागा (1946-47) और तेलंगाना (1946-51) के संघर्ष वामपंथी विचारधाराओं से प्रभावित उग्र किसान लामबंदी को दर्शाते हैं।
- इन आंदोलनों ने कृषि संकट को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ने, ग्रामीण जनता में सामाजिक जागरूकता, एकता और उपनिवेशवाद विरोधी प्रतिरोध को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्र. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दलित परिप्रेक्ष्य पर एक टिप्पणी लिखें। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का दलित दृष्टिकोण राजनीतिक स्वतंत्रता की लड़ाई के साथ-साथ सामाजिक उत्पीड़न और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष पर भी जोर देता है। जहाँ मुख्यधारा का राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता पर केंद्रित था, वहीं दलित नेताओं ने हाशिए पर पड़ी जातियों के लिए सामाजिक न्याय, समानता और सम्मान की आवश्यकता पर जोर दिया।

- डॉ. बी. आर. आंबेडकर दलित सरोकारों को मुखर करने वाले अग्रणी नेता के रूप में उभरे। उन्होंने जातिगत मुद्दों की अनदेखी के लिए कांग्रेस की आलोचना की और दलितों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए पृथक निर्वाचिका मंडल की माँग की। दलित वर्ग आंदोलन, बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924) और मंदिर प्रवेश आंदोलन जैसे आंदोलनों ने जाति-आधारित बहिष्कार से मुक्ति की माँग की।
- आंबेडकर की पहलों के परिणामस्वरूप स्वतंत्रता के बाद आरक्षण और मौलिक अधिकारों जैसे संवैधानिक संरक्षण प्राप्त हुए। इस प्रकार, दलित दृष्टिकोण ने स्वतंत्रता को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति के रूप में देखा, और जातिगत पदानुक्रम से मुक्त एक समतावादी और न्यायपूर्ण भारत की माँग की।

प्र. स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारतीय समाज में समतावाद की स्थापना में दलित संघर्ष के योगदान की विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दलितों के संघर्ष ने जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता से ऐतिहासिक रूप से पीड़ित समूहों द्वारा सामाजिक समानता, मानवीय गरिमा और राजनीतिक भागीदारी की जोरदार मांग का उदाहरण प्रस्तुत किया। प्रमुख स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ इस आंदोलन का उद्देश्य सामाजिक पदानुक्रमों का मुकाबला करना और एक समतावादी समाज का निर्माण करना था।

समतावाद की स्थापना में दलित संघर्ष का योगदान

- दलितों के प्रमुख नेता **डॉ. बीआर अंबेडकर** ने इस संघर्ष को सामाजिक न्याय के लिए एक व्यापक आंदोलन में बदल दिया। उन्होंने **बहिष्कृत हितकारिणी सभा और स्वतंत्र श्रमिक पार्टी** जैसी संस्थाओं के माध्यम से दलितों को उनके अधिकारों की वकालत करने के लिए संगठित किया। ऐतिहासिक **महाड़ सत्याग्रह (1927)**, जिसमें दलितों ने सार्वजनिक जल आपूर्ति तक पहुँच के अपने अधिकार का दावा किया, जाति-आधारित बहिष्कार का मुकाबला करने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ।
- विद्वान **एलेनोर जेलियट** इस बात पर जोर देते हैं कि दलित संघर्ष ने सामाजिक सुधार के साधन के रूप में **शैक्षिक सशक्तिकरण** की शुरुआत की। **अंबेडकर द्वारा 1945 में पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी** जैसी संस्थाओं की स्थापना ने दलितों के लिए शिक्षा की संभावनाओं को सुगम बनाया, जिससे हाशिए पर पड़े लोगों से ज्ञान के ऐतिहासिक बहिष्कार को खत्म किया जा सका।
- इस आंदोलन ने **राजनीतिक जागरूकता** को काफी हद तक बढ़ाया। गोलमेज सम्मेलन (1930-32) में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग, जिसे अंतत: **पूना समझौते** के माध्यम से सुलझाया गया, ने दलितों को एक अलग राजनीतिक निर्वाचन क्षेत्र के रूप में स्थापित किया। इतिहासकार **गेल ओमवेट का** मानना है कि इस राजनीतिक दावे ने मुख्यधारा के राष्ट्रवादी आंदोलन को जातिगत भेदभाव को एक प्रमुख सामाजिक चिंता के रूप में मान्यता देने के लिए मजबूर किया।

2 भारत के संविधान का निर्माण

प्र. "संविधान सभा के उद्देश्य संकल्प" पर टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: 22 जनवरी 1947 को भारतीय संविधान सभा द्वारा पारित उद्देश्य संकल्प (प्रस्ताव) में देश के भावी संविधान के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इसमें लोगों की संप्रभुता, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, स्थिति और अवसर की समानता तथा अल्पसंख्यकों और पिछड़े समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा पर जोर दिया गया था।

महत्व

- संविधान सभा का उद्देश्य प्रस्ताव काफी ऐतिहासिक और संवैधानिक महत्व रखता है क्योंकि इसने भारतीय संविधान के लिए मौलिक विचारों को स्थापित किया और एक स्वतंत्र भारत की परिकल्पना को रेखांकित किया। इसने स्वतंत्रता आंदोलन की राजनीतिक आकांक्षाओं को विशिष्ट संवैधानिक लक्ष्यों में सफलतापूर्वक परिवर्तित कर दिया, जिससे भारत के लिए एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में नींव रखी गई।
- यह प्रस्ताव लोकप्रिय संप्रभुता, लोकतंत्र, मौलिक अधिकार और सामाजिक न्याय जैसे आवश्यक आदर्शों की अपनी संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण है। इसने शासन के मूलभूत ढांचे को परिभाषित किया, भारत की एकता को बनाए रखने के लिए मजबूत एकात्मक विशेषताओं वाली संघीय प्रणाली का प्रस्ताव रखा, जबकि इसकी विविधता को अपनाया। दस्तावेज का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर ध्यान केंद्रित करना संस्थापक पिताओं के प्रगतिशील आदर्शों और भारतीय समाज को सुधारने के लिए उनके समर्पण को दर्शाता है।
- इसके अलावा, प्रस्ताव में समानता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे आदर्शों का समावेश भारत के सांस्कृतिक इतिहास को मान्यता देते हुए समकालीन लोकतांत्रिक मानदंडों के प्रति समर्पण को दर्शाता है।
- इसने **संविधान की प्रस्तावना के लिए दार्शनिक आधार** स्थापित किया और कई संवैधानिक खंडों के निर्माण को प्रभावित किया। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और सामाजिक कल्याण को आगे बढ़ाने पर संकल्प का ध्यान भारत के विकासात्मक राज्य प्रतिमान के लिए आधार तैयार करता है।

निष्कर्ष में, उद्देश्य प्रस्ताव भारत के संवैधानिक लोकतंत्र की वैचारिक नींव का उदाहरण है और संवैधानिक व्याख्या में एक मार्गदर्शक सिद्धांत बना हुआ है। इसका स्थायी महत्व न केवल इसके ऐतिहासिक महत्व के कारण है, बल्कि इसके स्थायी आदर्शों की अभिव्यक्ति के कारण भी है जो भारत के **संवैधानिक न्यायशास्त्र और लोकतांत्रिक विकास** को लगातार प्रभावित करते हैं।

प्रस्तावना का एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और लोकतांत्रिक भारत का लक्ष्य आज भी संवैधानिक चर्चाओं और शासन में एक महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में कार्य करता है।

प्र. "भारतीय संविधान पर ब्रिटिश संविधान की छाप" पर टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तर: भारत के संविधान को विश्व के सबसे विस्तृत संवैधानिक दस्तावेज होने का गौरव प्राप्त है। विभिन्न देशों के संविधानों के साथ-साथ भारत सरकार अधिनियम-1935 के लगभग 250 प्रावधानों को भारतीय संविधान में शामिल किया गया है।

- संविधान का राजनीतिक हिस्सा (कैबिनेट सरकार का सिद्धांत तथा कार्यपालिका और विधायिका के बीच संबंध) काफी हद तक ब्रिटिश संविधान से लिया गया है।
- भारत के संविधान ने अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के बजाय सरकार की ब्रिटिश संसदीय प्रणाली को चुना है। संसदीय प्रणाली विधायी और कार्यकारी अंगों के बीच सहयोग और समन्वय के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि अध्यक्षात्मक या राष्ट्रपतीय प्रणाली दो अंगों के बीच शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित है।
- भारत की संसदीय प्रणाली को जिम्मेदार सरकार और कैबिनेट सरकार के वेस्टमिंस्टर मॉडल के रूप में भी जाना जाता है। संविधान न केवल केंद्र में बल्कि राज्यों में भी संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है।
- भले ही भारत द्वारा ब्रिटिश संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है, बावजूद इसके संविधान निर्माताओं द्वारा संसदीय संप्रभुता के ब्रिटिश सिद्धांत और न्यायिक सर्वोच्चता के अमेरिकी सिद्धांत के बीच एक उचित समायोजन को प्राथमिकता दी गई है।

प्र. भारत का संविधान 'राष्ट्र की आधारशिला' है। (ग्रेनविल ऑस्टिन)। विश्लेषण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तर: भारतीय संविधान, राष्ट्र के सर्वोच्च कानूनी दस्तावेज के रूप में, उस ढांचे की स्थापना करता है जो राजनीतिक सिद्धांतों को नियंत्रित करता है, सरकारी संस्थानों की संरचना, प्रक्रियाओं, शक्तियों और कर्तव्यों को स्थापित करता है, तथा मौलिक अधिकारों, निदेशक सिद्धांतों और नागरिकों के कर्तव्यों को निर्धारित करता है।

- यह भारत के लोकतांत्रिक शासन का आधार है, जो यहां विधि के शासन, समानता और न्याय को सुनिश्चित करता है।

3 भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं

प्र. भूमि सुधार कार्यक्रमों के कारण कुछ संवैधानिक संशोधन हुए। टिप्पणी कीजिए।(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: स्वतंत्रता के बाद, भारत ने कृषि न्याय और समानता प्राप्त करने के लिए व्यापक भूमि सुधार कार्यक्रम शुरू किए-जमींदारी उन्मूलन, काश्तकारी विनियमन, भूमि हदबंदी और पुनर्वितरण। हालाँकि, इन सुधारों को अक्सर संविधान के अनुच्छेद 19(1)(f) और अनुच्छेद 31 के तहत संपत्ति के अधिकार के उल्लंघन का हवाला देते हुए जमींदारों द्वारा कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सुधार उपायों की सुरक्षा के लिए, सरकार ने कई संवैधानिक संशोधन पेश किए:

- **पहले संशोधन (1951)** ने अनुच्छेद 31A और 31B जोड़े और नौवीं अनुसूची बनाई, जिससे भूमि सुधार कानूनों को न्यायिक समीक्षा से सुरक्षा मिली।
- **चौथे (1955)** और **17वें (1964)** संशोधनों ने इन सुरक्षाओं को और मजबूत किया।
- बाद में, **44वें संशोधन (1978)** ने संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार के बजाय अनुच्छेद 300। के तहत एक कानूनी अधिकार के रूप में पुनर्वर्गीकृत किया।
- इन संशोधनों ने यह सुनिश्चित किया कि भूमि सुधारों को संवैधानिक बाधाओं के बिना लागू किया जा सके, जिससे नीति निर्देशक सिद्धांतों में परिकल्पित समाजवादी न्याय और समान भूमि वितरण के लक्ष्य को बल मिला।

प्र. संसदीय समितियाँ विधायी प्रक्रिया के लिए अनिवार्य हैं। यह संसद के दोनों सदनों के बीच पारस्परिक परागण (क्रॉस-पॉलिनेशन) के अवसर प्रदान करती हैं। विवेचन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: संसदीय समितियाँ भारतीय संसद में विधायी दक्षता और जवाबदेही के महत्वपूर्ण साधन हैं। ये समितियाँ जटिल नीतिगत मुद्दों, वित्तीय प्रस्तावों और विधायी मसौदों की विस्तृत जाँच सुनिश्चित करती हैं, जिनकी संसद अपने पूर्ण सत्र में समय की कमी के कारण पर्याप्त जाँच नहीं कर पाती।

विधायी प्रक्रिया में अपरिहार्य भूमिका

- **विस्तृत जाँच:** वित्त, रक्षा और विदेश मामलों की स्थायी समितियों जैसी समितियाँ विधेयकों की खंड-दर-खंड जाँच करती हैं, जिससे सूचित और निष्पक्ष विश्लेषण सुनिश्चित होता है।
- **विशेषज्ञ परामर्श:** ये समितियाँ विशेषज्ञों, हितधारकों और नागरिक समाज को सुझाव प्रदान करने का अवसर प्रदान करती हैं, जिससे कानून की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- **वित्तीय निगरानी:** लोक लेखा समिति (पीएसी) और प्राक्कलन समिति जैसी समितियाँ सार्वजनिक व्यय और कार्यकारी कार्यप्रणाली में जवाबदेही सुनिश्चित करती हैं।
- **प्रशासनिक जवाबदेही:** सरकारी आश्वासन समिति और अधीनस्थ विधान समिति कार्यकारी कार्यों और नियम-निर्माण की निगरानी करती हैं, जिससे सरकार पर विधायी नियंत्रण सुदृढ़ होता है।

दोनों सदनों के बीच विचारों का आदान-प्रदान

- संसदीय समितियाँ लोकसभा और राज्यसभा के बीच परस्पर संवाद को बढ़ावा देती हैं, क्योंकि दोनों सदनों के सदस्य एक साथ कार्य करते हैं।
- यह अंतर-सदन सहयोग राजनीतिक घर्षण को कम करता है और प्रमुख मुद्दों पर आम सहमति बनाने को प्रोत्साहित करता है।

4 केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के प्रधान अंग

प्र. 2019 के पश्चात जम्मू और कश्मीर में बदलते राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने वाले प्रमुख कारकों को रेखांकित करें। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: अगस्त 2019 में अनुच्छेद 370 और 35A के निरस्त होने के बाद जम्मू और कश्मीर के राजनीतिक परिदृश्य में एक ऐतिहासिक परिवर्तन आया, जिससे इसका विशेष संवैधानिक दर्जा समाप्त हो गया। राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों-जम्मू और कश्मीर (विधानसभा सहित) और लद्दाख (विधानसभा रहित) में पुनर्गठित किया गया। 2019 के बाद के परिदृश्य को आकार देने वाले प्रमुख कारकों में शामिल हैं:

- शासन का केंद्रीकरण और भारतीय संघ के साथ बेहतर एकीकरण।
- परिसीमन प्रक्रिया (2022) जम्मू क्षेत्र से प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए निर्वाचन क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन।
- जम्मू और कश्मीर अपनी पार्टी जैसे नए राजनीतिक दलों का उदय, पारंपरिक दलों (एनसी, पीडीपी) के प्रभुत्व को चुनौती दे रहा है।
- विकास, बुनियादी ढाँचे और निवेश पर ध्यान केंद्रित, जिसका उद्देश्य शासन और विकास के माध्यम से राजनीति को सामान्य बनाना है।
- सुरक्षा स्थिरीकरण और उग्रवाद में कमी, हालाँकि नागरिक स्वतंत्रता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को लेकर चिंताएँ बनी हुई हैं। कुल मिलाकर, जम्मू और कश्मीर की राजनीति पहचान-आधारित स्वायत्तता से विकास और एकीकरण-उन्मुख शासन की ओर परिवर्तित हो रही है।

प्र. भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के सलाहकारी क्षेत्राधिकार की प्रकृति तथा संवैधानिक प्रावधानों का परीक्षण कीजिए। अपने उत्तर का समुचित उदाहरणों द्वारा मूल्यांकन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: भारत के सर्वोच्च न्यायालय का सलाहकारी क्षेत्राधिकार संविधान के अनुच्छेद 143 से प्राप्त एक अनूठी विशेषता है। यह भारत के राष्ट्रपति को सार्वजनिक महत्व या कानूनी अस्पष्टता के मामलों पर न्यायालय की राय लेने का अधिकार देता है, जिससे न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच परामर्शात्मक संबंध मजबूत होते हैं।

संवैधानिक प्रावधान (अनुच्छेद 143)

- **अनुच्छेद 143(1):** राष्ट्रपति किसी भी विधि या सार्वजनिक महत्व के तथ्य के प्रश्न को सर्वोच्च न्यायालय को संदर्भित कर सकता है। न्यायालय, अपनी इच्छानुसार सुनवाई के बाद, राष्ट्रपति को अपनी राय दे सकता है।
- **अनुच्छेद 143(2):** राष्ट्रपति संविधान-पूर्व संधियों, समझौतों या प्रसंविदाओं से उत्पन्न विवादों पर न्यायालय की राय ले सकता है।
- यह अधिकार क्षेत्र विवेकाधीन है, अनिवार्य नहीं-न्यायालय संदर्भ को अस्वीकार कर सकता है।

सलाहकार क्षेत्राधिकार की प्रकृति

- यह परामर्शात्मक है, न कि न्यायिक-इसमें कोई पक्ष, आदेश या बाध्यकारी निर्णय शामिल नहीं हैं।
- दी गई राय राष्ट्रपति या सरकार पर बाध्यकारी नहीं है, हालाँकि इसमें अत्यधिक नैतिक और प्रेरक शक्ति निहित है।
- यह एक निवारक तंत्र के रूप में कार्य करता है, संवैधानिक अस्पष्टताओं को विवादों में बदलने से पहले ही हल करता है।
- शक्तियों के पृथक्करण को बनाए रखते हुए न्यायिक-कार्यपालिका सहयोग को मजबूत करता है।

प्रमुख उदाहरण

- **बेरुबारी संघ (1960) के मामले में:** भारतीय क्षेत्र के पाकिस्तान को हस्तांतरण पर, न्यायालय ने सलाह दी कि एक संवैधानिक संशोधन आवश्यक है।
- **केशव सिंह (1965) के मामले में:** विधायी विशेषाधिकार के संबंध में विधायिका और न्यायपालिका की शक्तियों को स्पष्ट किया।
- **अयोध्या विवाद संदर्भ (1993):** न्यायालय ने उत्तर देने से इनकार कर दिया क्योंकि इसमें कानूनी नहीं, बल्कि तथ्यात्मक मुद्दे शामिल थे।
- **विशेष संदर्भ (2002):** गुजरात विधानसभा भंग करने पर, न्यायालय ने राष्ट्रपति को संवैधानिक औचित्य पर सलाह दी।

निष्कर्ष: सर्वोच्च न्यायालय का सलाहकार क्षेत्राधिकार कानूनी स्पष्टता और निवारक मार्गदर्शन प्रदान करके संवैधानिक शासन को कायम रखता है। हालाँकि यह बाध्यकारी नहीं है, फिर भी इसकी राय कार्यपालिका की कार्रवाई को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है, जिससे न्यायिक विवेक और राजनीतिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन सुनिश्चित होता है।

प्र. "विधान परिषद की प्रासंगिकता" पर टिप्पणी कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: विधान परिषद, जो राज्यों की विधायिका का उच्च सदन है, भारत के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता को लेकर एक जटिल प्रश्न प्रस्तुत करती है।

विधान परिषद पर विविध दृष्टिकोण

- संवैधानिक विद्वान **सुभाष कश्यप** का तर्क है कि ये परिषदें विचारशील निकायों के रूप में कार्य करती हैं, जो अनुभवी पेशेवरों को सीधे चुनावी दबावों से मुक्त होकर विधायी प्रक्रियाओं में भाग लेने का अवसर प्रदान करती हैं। **अनुच्छेद 171** के तहत स्नातकों, शिक्षकों और स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों को परिषद में शामिल करना विशेष विशेषज्ञता और विविध दृष्टिकोणों के माध्यम से विधायी विचार-विमर्श को समृद्ध कर सकता है।

5

आधारिक लोकतंत्र

प्र. पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा एक ऐसा मंच है, जो लोगों की सामूहिक बुद्धिमत्ता, आकांक्षाओं और इच्छा को अभिव्यक्त करता है। टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तरः ग्राम सभा, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 243(b) में वर्णित है, एक ऐसी सभा है जिसमें गांव पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले सभी पात्र मतदाता शामिल होते हैं। 1992 के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के तहत इसे लोकतांत्रिक शासन की मूल इकाई के रूप में मान्यता दी गई है, जिसमें नागरिकों की स्थानीय शासन में प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए नियमित बैठकें आवश्यक होती हैं।

सामूहिक मंच के रूप में ग्राम सभा

- राजनीतिक विद्वान ग्राम सभा को **"ग्राम संसद" के रूप में परिभाषित करते हैं,** जो प्रत्यक्ष लोकतंत्र में इसके महत्व को उजागर करता है।

अनुच्छेद 243A राज्यों को ग्राम सभाओं को विशेष अधिकार प्रदान करने का अधिकार देता है, जिससे वे सहभागी लोकतंत्र के लिए आवश्यक मंच बन जाते हैं। **ग्यारहवीं अनुसूची के 29 विषय** ग्राम सभा के परामर्श को आवश्यक बनाते हैं, जो स्थानीय शासन में इसके अभिन्न कार्य को रेखांकित करते हैं।

- **सामाजिक लेखापरीक्षा कार्यों के लिए** ग्राम सभा की बैठकें महत्वपूर्ण होती हैं, जैसा कि मनरेगा के कार्यान्वयन से स्पष्ट है, जहां ग्राम सभाएं कार्य निष्पादन और धन आवंटन की देखरेख करती हैं।
- विद्वान **जॉर्ज मैथ्यू** का तर्क है कि ग्राम सभाएं हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए प्रभावी मंच के रूप में काम करती हैं। ग्राम सभा की बैठकों में **महिलाओं (33%)** और आरक्षित श्रेणियों का अनिवार्य प्रतिनिधित्व **समावेशी निर्णय** लेने की गारंटी देता है।
- पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996, आदिवासी क्षेत्रों में ग्राम सभाओं को विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन पर विशेष अधिकार प्रदान करता है।
- **दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग ने** नियोजन प्रक्रिया में ग्राम सभा के महत्व पर जोर दिया। **ग्राम पंचायत विकास योजना (जीपीडीपी) तैयार करने में उनकी भागीदारी** नीचे से ऊपर की योजना की गारंटी देती है। आयोग ने संकेत दिया कि सक्रिय ग्राम सभाओं वाले राज्यों ने सामाजिक उपायों का बेहतर क्रियान्वयन किया।
- **जन योजना अभियान** जैसी पहलों से भागीदारी नियोजन में ग्राम सभा की महत्ता का पता चलता है। पंचायती राज मंत्रालय के अनुसार वर्तमान में 250,000 से अधिक ग्राम पंचायतें ग्राम सभा के साथ बातचीत के माध्यम से अपनी विकास योजनाएं तैयार करती हैं।
- फिर भी, बाधाएं बनी हुई हैं। संविधान के कामकाज की समीक्षा करने वाले राष्ट्रीय आयोग ने अनियमित बैठकों और न्यूनतम भागीदारी को प्राथमिक मुद्दों के रूप में पहचाना। इन सीमाओं के बावजूद, **केरल के जन नियोजन मॉडल** जैसे सफल उदाहरण लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के लिए ग्राम सभा की क्षमता का उदाहरण देते हैं।

ग्राम सभा जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के लिए मौलिक है, जो शासन और विकास नियोजन में लोगों की भागीदारी को सुगम बनाती है। व्यक्तियों की इच्छाओं को निर्देशित करने में इसकी प्रभावकारिता इसे संविधान में उल्लिखित लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के दृष्टिकोण को साकार करने के लिए आवश्यक बनाती है।

प्र. जिला योजना समिति के कार्य पर टिप्पणी कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2023)

उत्तरः प्रत्येक राज्य जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं को समेकित करने और पूरे जिले के लिए एक मसौदा विकास योजना तैयार करने के लिए जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति की स्थापना करता है।

- संविधान का अनुच्छेद 243 ZD ग्राम पंचायत द्वारा तैयार की गई विकास योजनाओं को समेकित करने के लिए जिला योजना समितियों के गठन का प्रावधान करता है।
- जिला योजना समितियां पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करती हैं।
- जिला योजना में जिला स्तर पर एक विकास परिदृश्य बनाना शामिल है, जो लोगों की विशिष्ट आवश्यकताओं, क्षेत्र की विकास क्षमता और उपलब्ध बजटीय आवंटन के अनुरूप हो।
- ऐसी योजना से प्रत्येक जिले की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप निवेश निर्णय लेने में सहायता मिलती है। जिला योजना समिति आर्थिक और सामाजिक न्याय योजना के कार्य के लिए महत्वपूर्ण है जो अब एक अनिवार्य स्थानीय कार्य है।
- जिला योजना समिति, विकास योजना प्रारूप तैयार करने में पंचायतों और नगरपालिकाओं के सामान्य हित के विषय, जिनके अंतर्गत स्थानिक योजना, जल तथा अन्य भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों का वितरण आदि शामिल है, का ध्यान रखती है।
- यह विकास योजना प्रारूप तैयार करने में उपलब्ध वित्तीय या अन्य संसाधनों की मात्रा और प्रकार भी निर्धारित करती है।

6 संवैधानिक/सांविधिक संस्थाएं

प्र. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है? टिप्पणी कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के तहत 1993 में स्थापित, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) का उद्देश्य भारत में मानवाधिकारों की रक्षा और संवर्धन करना है। इसने जागरूकता बढ़ाने, उल्लंघनों की जाँच करने और सुधारों की सिफारिश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उपलब्धियाँ

- यह मानवाधिकारों के प्रहरी के रूप में कार्य करता है, हिरासत में होने वाली मौतों, बंधुआ मजदूरी, बाल अधिकारों और सांप्रदायिक हिंसा में हस्तक्षेप करता है।
- इसने नीतिगत बदलावों में योगदान दिया है, जैसे जेल की स्थिति में सुधार और पुलिस की जवाबदेही।
- यह स्वप्रेरणा से की गई कार्रवाइयों और पूछताछ के माध्यम से जन शिकायत निवारण के लिए एक मंच प्रदान करता है।

सीमाएँ

- इसकी सिफारिशें सलाहकारी हैं, बाध्यकारी नहीं, जिसके कारण प्रवर्तन कमजोर होता है।
- अधिनियम की धारा 19 के तहत सशस्त्र बलों पर अधिकार क्षेत्र का अभाव संघर्ष क्षेत्रों में इसकी प्रभावशीलता को सीमित करता है।
- संसाधनों और कर्मचारियों की कमी समय पर जाँच में बाधा डालती है।

निष्कर्ष: हालाँकि NHRC ने मानवाधिकार जागरूकता और जवाबदेही को बढ़ाया है, लेकिन अधिक स्वायत्तता, प्रवर्तन शक्तियों और संस्थागत सुधारों के बिना इसका प्रभाव सीमित ही रहता है।

प्र. भारत के निर्वाचन आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति को लेकर बहस चल रही है। इसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: भारत का चुनाव आयोग अनुच्छेद 324 के तहत एक संवैधानिक निकाय है, जिसे स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने का दायित्व सौंपा गया है। आयोग की स्वतंत्रता और निष्पक्षता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सदस्यों - मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों - की नियुक्ति कैसे की जाती है। एक निश्चित चयन प्रक्रिया के अभाव में राजनीतिक प्रभाव और संस्थागत स्वायत्तता को लेकर बहस छिड़ी हुई है।

मौजूदा प्रक्रिया

- अनुच्छेद 324(2) के तहत, राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त और चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति करते हैं।
- व्यवहार में, ये नियुक्तियाँ मंत्रिपरिषद की सलाह पर की जाती हैं, जिसका अर्थ है कि सत्तारूढ़ सरकार इस प्रक्रिया को प्रभावी रूप से नियंत्रित करती है।
- संविधान में कोई विशिष्ट परामर्शदात्री या संसदीय तंत्र निर्धारित नहीं है।

मुद्दे और चिंताएँ

- **कार्यपालिका का प्रभुत्व:** वर्तमान प्रणाली सत्तारूढ़ दल को नियुक्तियों को प्रभावित करने की अनुमति देती है, जिससे निष्पक्षता पर संदेह पैदा होता है।
- **पारदर्शिता का अभाव:** चयन प्रक्रिया में कोई औपचारिक मानदंड या सार्वजनिक जाँच नहीं होती।
- **जनता के विश्वास का क्षरण:** चुनाव प्रबंधन में पक्षपात के आरोप लोकतांत्रिक वैधता को कमजोर करते हैं।
- **कार्यकाल और निष्कासन असंतुलन:** हालाँकि मुख्य चुनाव आयुक्त को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान सुरक्षा प्राप्त है, लेकिन चुनाव आयुक्तों को आसानी से हटाया जा सकता है, जिससे पदानुक्रम और निर्भरता पैदा होती है।

न्यायिक और संस्थागत दृष्टिकोण

- अनूप बरनवाल बनाम भारत संघ (2023) मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जब तक संसद कोई कानून नहीं बनाती, तब तक नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री, लोकसभा में विपक्ष के नेता और भारत के मुख्य न्यायाधीश की एक समिति द्वारा की जानी चाहिए। न्यायालय ने संस्थागत स्वतंत्रता और पारदर्शिता पर जोर दिया।

हालिया घटनाक्रम

- सरकार के मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और पदावधि) विधेयक, 2023 में मुख्य न्यायाधीश के स्थान पर एक कैबिनेट मंत्री को नियुक्त करने का प्रस्ताव है - जिसे सर्वोच्च न्यायालय की सिफारिश से एक कदम पीछे हटने के रूप में देखा जा रहा है।

निष्कर्ष

- भारत के चुनावी लोकतंत्र की आधारशिला - चुनाव आयोग की स्वायत्तता, विश्वसनीयता और निष्पक्षता की रक्षा के लिए एक संतुलित नियुक्ति तंत्र आवश्यक है।

7

संघ राज्य पद्धति

प्र. भारतीय राजनीति में हाल में हुए परिवर्तनों ने संघवाद की भावना को भारत से विनष्ट नहीं किया है। इस कथन का समुचित उदाहरणों द्वारा आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: भारत में संघवाद, जैसा कि संविधान में निहित है, के.सी. व्हेयर द्वारा "एकात्मक पूर्वाग्रह वाला अर्ध-संघीय (quasi-federal with a unitary bias)" के रूप में वर्णित किया गया है। यह एक सशक्त केंद्र को राज्यों के लिए पर्याप्त शक्तियों के साथ जोड़ता है। हाल के राजनीतिक और प्रशासनिक घटनाक्रमों ने इस बात पर बहस छेड़ दी है कि क्या यह संतुलन कायम रखा जा रहा है या केंद्रीकरण की ओर झुका हुआ है।

संघवाद में तनाव के संकेत

- **केंद्रीय प्रभुत्व:** विपक्ष शासित राज्यों में केंद्रीय एजेंसियों (ईडी, सीबीआई, एनआईए) का बढ़ता उपयोग राजनीतिक हस्तक्षेप की चिंताएँ बढ़ाता है।
- **राज्यपाल की भूमिका:** राज्यपालों और निर्वाचित राज्य सरकारों (जैसे, तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल) के बीच लगातार टकराव ने केंद्र-राज्य संबंधों को तनावपूर्ण बना दिया है।
- **राजकोषीय केंद्रीकरण:** जीएसटी व्यवस्था और धन के कम हस्तांतरण ने राज्यों की राजकोषीय स्वायत्तता को सीमित कर दिया है।
- **अनुच्छेद 356 का उपयोग:** हालाँकि कम बार होता है, लेकिन दिल्ली और जम्मू-कश्मीर के आसपास की बहसें क्षेत्रीय शासन में केंद्र की मुखर भूमिका को दर्शाती हैं।
- **विधायी अतिक्रमण:** कृषि सुधारों और शिक्षा जैसे विषयों पर केंद्रीय कानूनों को राज्य के अधिकार क्षेत्र को कमजोर करने वाला माना जाता है।

संघीय भावना को संरक्षित करते हुए रुझानों का प्रतिसंतुलन

- **सहकारी संघवाद:** नीति आयोग, जीएसटी परिषद और अंतर-राज्यीय परिषद जैसे मंच सहभागी नीति-निर्माण को प्रोत्साहित करते हैं।
- **न्यायिक सुरक्षा उपाय:** सर्वोच्च न्यायालय ने संघीय सिद्धांतों को सुदृढ़ किया है, जैसा कि एस.आर. बोम्मई (1994) (अनुच्छेद 356 की सीमाएँ) और दिल्ली सरकार बनाम एलजी (2023) (निर्वाचित सरकार की शक्तियों को बरकरार रखते हुए) में हुआ।
- **क्षेत्रीय अभिकथन:** राज्य-विशिष्ट कल्याणकारी योजनाएँ (जैसे, तमिलनाडु की सामाजिक नीतियाँ, तेलंगाना की सिंचाई पहल) बढ़ती राजनीतिक स्वायत्तता को दर्शाती हैं।
- **गठबंधन की राजनीति:** क्षेत्रीय दल केंद्र में राष्ट्रीय नीति और शासन को प्रभावित करना जारी रखते हैं।

निष्कर्ष: हालांकि केंद्र सरकार के अतिक्रमण के उदाहरणों ने आशंकाएँ पैदा की हैं, फिर भी भारत का संघवाद गतिशील, लचीला और अनुकूलनशील बना हुआ है। न्यायिक जाँच, संस्थागत संवाद और राजनीतिक बातचीत का संयोजन यह सुनिश्चित करता है कि सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद की सच्ची भावना भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे का मार्गदर्शन करती रहे।

प्र. राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी की बाधाओं को स्पष्ट कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: 73वें और 74वें संविधान संशोधन (1992) ने पंचायती राज संस्थाओं (पीआरआई) और शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) में महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित करके भारत के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में एक मील का पत्थर स्थापित किया। हालाँकि, संवैधानिक गारंटियों के बावजूद, स्थानीय शासन में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी कई संरचनात्मक और सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाओं के कारण बाधित बनी हुई है।

8 योजना और आर्थिक विकास

प्र. परीक्षण कीजिए कि किस प्रकार योजना एवं आर्थिक विकास के नेहरूवादी दृष्टिकोण ने, भारत में आर्थिक नियोजन के आरंभिक चरण में, आधुनिक भारत के आर्थिक विकास की नींव डाली थी।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: पंडित जवाहरलाल नेहरू के दृष्टिकोण से निर्देशित भारत के आर्थिक नियोजन के प्रारंभिक चरण ने एक आत्मनिर्भर, औद्योगिक और आधुनिक अर्थव्यवस्था की नींव रखी। नेहरू नियोजन को केवल एक आर्थिक अभ्यास के रूप में नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में देखते थे, जो लोकतांत्रिक समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के अनुरूप था।

नेहरूवादी नियोजन दृष्टिकोण

- केंद्रीय नियोजन के सोवियत मॉडल पर आधारित, लेकिन भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे के अनुकूल।
- इसका उद्देश्य तीव्र औद्योगीकरण, वैज्ञानिक प्रगति और सामाजिक समानता प्राप्त करना था।
- निजी उद्यम के लिए स्थान बनाए रखते हुए, अर्थव्यवस्था के प्रमुख स्तंभ के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका पर बल दिया गया।

प्रारंभिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ (1951-1965)

- **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56):** कृषि, सिंचाई और सामुदायिक विकास पर केंद्रित, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण उत्थान सुनिश्चित करना।
- **द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61):** महालनोबिस मॉडल से प्रेरित होकर, इसने भारी उद्योगों, पूँजीगत वस्तुओं और अवसंरचनात्मक विकास पर जोर दिया, जिससे औद्योगिक आधुनिकीकरण की नींव रखी गई।
- **संस्थागत विकास:** योजना आयोग (1950) की स्थापना, आईआईटी, एम्स, डीआरडीओ और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों ने वैज्ञानिक और मानव पूँजी वृद्धि को बढ़ावा दिया।
- **सामाजिक न्याय अभिविन्यास:** नियोजन का उद्देश्य भूमि सुधारों और सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से असमानताओं और क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना था।

दीर्घकालिक प्रभाव

- नेहरूवादी युग में निर्मित औद्योगिक आधार भारत के बाद के उदारीकरण (1991 के बाद) के विकास का इंजन बन गया।
- बुनियादी ढाँचे, वैज्ञानिक संस्थानों और मानव संसाधन क्षमता के विकास ने तकनीकी प्रगति और राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा दिया।
- हालाँकि अकुशलता और अति-केंद्रीकरण के लिए आलोचना की गई, नेहरूवादी योजना ने रणनीतिक स्वायत्तता और मिश्रित-अर्थव्यवस्था सुधारों के लिए एक आधार प्रदान किया।

निष्कर्ष:

- नेहरूवादी नियोजन मॉडल ने भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन की सफल शुरुआत की। इसने संस्थागत, औद्योगिक और मानव पूँजी के स्तंभों का निर्माण किया जो आधुनिक भारत के आर्थिक विकास और वैश्विक जुड़ाव को सहारा दे रहे हैं।

प्र. योजना आयोग की विरासत का भारत की विकास नीतियों पर अभी भी प्रभाव दिखता है। विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 1950 में स्थापित योजना आयोग, पंचवर्षीय योजनाएं तैयार करने और केंद्रीकृत योजना के माध्यम से भारत की विकासात्मक प्राथमिकताओं का प्रबंधन करने के लिए जिम्मेदार संगठन था। 2014 में अपने विघटन तक यह भारत के मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल के लिए प्रमुख थिंक टैंक के रूप में कार्य करता रहा।

योजना आयोग की विरासत

- आयोग की विरासत ने भारत की विकास रणनीतियों को कई महत्वपूर्ण तरीकों से आकार देने का कार्य किया है। जैसा कि अर्थशास्त्री **मोंटेक सिंह अहलूवालिया** कहते हैं, शुरू में इसने दीर्घकालिक रणनीतिक योजना और अंतर-क्षेत्रीय सहयोग की प्रथा की शुरुआत की। नीति आयोग, जो योजना आयोग का उत्तराधिकारी बना, अपनी त्रैवार्षिक कार्य योजनाओं और सप्तवर्षीय रणनीतिक पत्रों के माध्यम से इस पद्धति को कायम रखता है।
- आयोग का ध्यान भारी उद्योगों और बुनियादी ढांचे में **सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश** पर केंद्रित था, जिसे अर्थशास्त्री **राकेश मोहन "कमांडिंग हाइट्स" दृष्टिकोण** कहते हैं। यह दृष्टिकोण सरकार की नीतियों को प्रभावित करता रहा है, जैसा कि "मेक इन इंडिया" और "उत्पादन आधारित प्रोत्साहन (PLI) योजना" जैसी पहल से स्पष्ट होता है, जो राज्य-निर्देशित औद्योगिक विकास के पहलुओं को शामिल करते हैं।
- आयोग के केंद्र-राज्य समन्वय के **संस्थागत ढांचे**, विशेष रूप से राष्ट्रीय विकास परिषद के माध्यम से, आधुनिक संघीय संबंधों को प्रभावित किया है। विकास अर्थशास्त्री **जीन ड्रेज** ने यह उल्लेख किया है कि, हालांकि "सभी के लिए एक ही समाधान" (one-size-fits-all) पद्धति की आलोचना की गई है, केंद्र-राज्य विकास साझेदारी की मौलिक संरचना जीएसटी परिषद और नीति आयोग के राज्य विकास सूचकांक जैसी परियोजनाओं में बनी हुई है।

9 भारतीय राजनीति में जाति, धर्म एवं नृजातीयता

प्र. भारत में राजनीतिक सक्रियता के लिए जाति एक महत्वपूर्ण धुरी बनी हुई है। जाति जनगणना लोगों की आकांक्षाओं को कैसे पूरा करेगी? विवेचना कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: जाति लंबे समय से भारत की सामाजिक संरचना और राजनीतिक लामबंदी को आकार देने में एक महत्वपूर्ण कारक रही है। चुनावी राजनीति, कल्याणकारी योजनाओं का वितरण और नीतिगत प्राथमिकताएँ अक्सर जातिगत समीकरणों से प्रभावित होती हैं। देशव्यापी जाति जनगणना की माँग जोर पकड़ रही है क्योंकि इसे सामाजिक न्याय और समावेशी शासन प्राप्त करने के एक साधन के रूप में देखा जा रहा है ।

राजनीतिक लामबंदी के आधार के रूप में जाति

- जाति एक सामूहिक पहचान के रूप में कार्य करती है, जो मान्यता और प्रतिनिधित्व चाहने वाले समूहों को एकजुटता प्रदान करती है।
- राजनीतिक दल वोट बैंक बनाने और सत्ता में हिस्सेदारी का दावा करने के लिए जाति-आधारित समूहों को लामबंद करते हैं।
- हालाँकि, 1931 से अद्यतन जातिगत आंकड़ों का अभाव (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर) साक्ष्य-आधारित नीति-निर्माण को सीमित करता है।

जाति जनगणना आकांक्षाओं को कैसे पूरा कर सकती है

- **आंकड़ों पर आधारित नीति निर्माण:** जाति जनगणना सामाजिक समूहों पर सटीक जनसांख्यिकीय आंकड़े प्रदान करेगी, जिससे लक्षित कल्याणकारी योजनाओं और संसाधन आवंटन में मदद मिलेगी।
- **सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना:** यह आरक्षण की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने और वास्तविक पिछड़ेपन के आधार पर कोटा के तर्कसंगत विस्तार या पुनर्गठन को सक्षम करने में मदद करेगी।
- **मान्यता और सशक्तिकरण:** वर्तमान में कम प्रतिनिधित्व वाले या गलत वर्गीकृत हाशिए पर पड़े समुदायों को आधिकारिक मान्यता मिल सकती है, जिससे उनकी राजनीतिक आवाज और गरिमा बढ़ेगी।
- **लोकतांत्रिक जवाबदेही को मजबूत करना:** आँकड़ों की पारदर्शिता शासन को अधिक समावेशी बनाएगी और विकास प्रक्रियाओं में समान भागीदारी सुनिश्चित करेगी।
- **राजनीतिक दुरुपयोग पर अंकुश:** प्रामाणिक आँकड़ों के साथ, जाति-आधारित राजनीति प्रतीकात्मक तुष्टिकरण से साक्ष्य-आधारित समावेशन की ओर स्थानांतरित हो सकती है।

चुनौतियाँ

- आँकड़ों के राजनीतिकरण और सामाजिक विखंडन का जोखिम।
- प्रशासनिक जटिलता और गोपनीयता संबंधी चिंताएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

निष्कर्ष

जाति जनगणना, यदि पारदर्शी तरीके से और विवेकपूर्ण तरीके से की जाए, तो समानता के संवैधानिक आदर्शों और जाति-आधारित वंचना की जमीनी हकीकतों के बीच की खाई को पाट सकती है। यह जाति को विभाजन के साधन से सशक्तिकरण और समावेशी नीति-निर्माण के साधन में बदल देगी।

प्र. "सापेक्षिक वंचना नृजातीय संघर्ष का एक मुख्य स्रोत है।" उपयुक्त उदाहरणों सहित इस कथन को विस्तार से समझाइए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: भारतीय राजनीति में जातीयता का संबंध राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए समान सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक या क्षेत्रीय पहचान से एकजुट समूहों की लामबंदी से है। ये पहचानें विशेष रूप से तब प्रमुख हो जाती हैं जब समूह अन्य समुदायों की तुलना में अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में अंतर को पहचानते हैं।

सापेक्षिक वंचना और जातीय संघर्ष

- **टेड रॉबर्ट गुर के** सापेक्ष वंचना के सिद्धांत के अनुसार जातीय संघर्ष तब उत्पन्न होते हैं जब समुदाय अपनी मूल्य आकांक्षाओं और मूल्य क्षमताओं के बीच असमानता को पहचानते हैं। भारत में, यह अंतर-समूह तुलना के कई पहलुओं से स्पष्ट है।
- राजनीतिक विश्लेषक **पॉल ब्रास** का मानना है कि पूर्वोत्तर भारत में जातीय संघर्ष मुख्य रूप से कथित आर्थिक असमानताओं के कारण हैं। विकास में हाशिए पर होने की भावना और जनसांख्यिकीय बदलावों को लेकर आशंकाओं ने असम में बोडो आंदोलन जैसे विरोध प्रदर्शनों को तेज कर दिया है। **बोडोलैंड प्रादेशिक क्षेत्र की स्थापना** दर्शाती है कि सापेक्षिक अभाव किस तरह स्वशासन की आकांक्षाओं को बढ़ावा देता है।
- समाजशास्त्री **दीपांकर गुप्ता** बताते हैं कि सरकारी नौकरियों और शैक्षिक अवसरों की प्रतिस्पर्धा में सापेक्ष वंचना की प्रक्रिया कैसे कार्य करती है। आरक्षण लाभ के लिए हरियाणा में जाट आंदोलन (2016) और महाराष्ट्र में मराठा प्रदर्शन (2018) यह दर्शाते हैं कि आर्थिक रूप से प्रभावशाली लेकिन राजनीतिक रूप से असुरक्षित समूह कथित सापेक्ष नुकसान के जवाब में कैसे लामबंद होते हैं।

10

दल प्रणाली

प्र. सोदाहरण समझाइये कि किस प्रकार भारत में राजनीतिक दलों ने ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्ग को राजनीति की मुख्यधारा में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2025)

उत्तर: भारत में राजनीतिक दल लोकतंत्र को सामाजिक न्याय और समावेशिता के माध्यम में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अनुसूचित जातियों (एससी), अनुसूचित जनजातियों (एसटी), अन्य पिछड़ा वर्गों (ओबीसी) और अल्पसंख्यकों को संगठित करके, उन्होंने ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समूहों को मुख्यधारा की राजनीतिक प्रक्रिया में एकीकृत किया है, जिससे भारत के प्रतिनिधि लोकतंत्र को और मजबूती मिली है।

राजनीतिक समावेशन में राजनीतिक दलों की भूमिका

- **चुनावी प्रतिनिधित्व:** महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) ने विधानसभाओं में दलितों और आदिवासियों के प्रतिनिधित्व को बढ़ावा दिया। संसद और राज्य विधानसभाओं में संवैधानिक आरक्षण (अनुच्छेद 330-332) का प्रमुख दलों ने समर्थन किया और उसे लागू किया।
- **पहचान-आधारित दलों का उदय:** कांशीराम और मायावती द्वारा स्थापित बहुजन समाज पार्टी (बसपा) ने दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों को राजनीतिक आवाज दी, जो ष्बहुजन हिताय, बहुजन सुखायष् जैसे नारों के माध्यम से सशक्तिकरण का प्रतीक था। समाजवादी पार्टी (सपा) और राष्ट्रीय जनता दल (राजद) ने मंडल आंदोलन के माध्यम से चुनावी राजनीति को नया रूप देते हुए उत्तर भारत में अन्य पिछड़े वर्गों को संगठित किया।
- **क्षेत्रीय और जनजातीय प्रतिनिधित्व:** झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) और बीजू जनता दल (बीजद) जैसी पार्टियों ने आदिवासी और क्षेत्रीय आकांक्षाओं को आगे बढ़ाया है और शासन में समावेश सुनिश्चित किया है। पूर्वोत्तर में, नागा पीपुल्स फ्रंट और मिजो नेशनल फ्रंट जैसी पार्टियों ने आदिवासी हितों को राष्ट्रीय राजनीतिक ढाँचे में एकीकृत किया।
- **समावेशी नीतियाँ और शासन:** पार्टियों ने सकारात्मक कार्रवाई, कल्याणकारी योजनाएँ और सामाजिक न्याय कानून (जैसे, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989) लागू किए हैं।
    - राजनीतिक प्रतिस्पर्धा ने समावेशी बयानबाजी और कल्याण-उन्मुख राजनीति को प्रोत्साहित किया है जिससे हाशिये के समूहों को लाभ हुआ है।

निष्कर्ष: प्रतिनिधित्व, लामबंदी और कल्याण-उन्मुख शासन के माध्यम से, राजनीतिक दलों ने सामाजिक रूप से बहिष्कृत लोगों को भारत के लोकतंत्र में सक्रिय भागीदार बनाया है। निरंतर असमानताओं के बावजूद, दलीय राजनीति ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों के सशक्तिकरण, जागरूकता और राष्ट्रीय मुख्यधारा में एकीकरण का एक प्रमुख माध्यम रही है।

प्र. सरकार की निर्णयन प्रक्रिया में दबाव समूहों की भूमिका का आलोचनात्मक आकलन कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2024)

उत्तर: दबाव समूह संगठित समूह होते हैं जिनका उद्देश्य चुनावी राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से शामिल हुए बिना सरकारी नीतियों को प्रभावित करना होता है। व्यावसायिक संघों, ट्रेड यूनियनों, पर्यावरण संगठनों और पेशेवर निकायों सहित ये संस्थाएं विविध वकालत और लॉबिंग प्रयासों के माध्यम से सार्वजनिक नीति को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में दबाव समूह की भूमिका

- सरकारी निर्णय लेने पर दबाव समूहों का प्रभाव महत्वपूर्ण है। राजनीतिक वैज्ञानिक **डेविड ट्रूमैन** का तर्क है कि वे **नागरिकों और सरकार के बीच आवश्यक बिचौलियों के रूप में कार्य करते हैं,** विशेष हितों को व्यक्त करते हैं जिन्हें अन्यथा उपेक्षित किया जा सकता है। कोविड-19 के दौरान भारतीय चिकित्सा संघ की पैरवी ने स्वास्थ्य सेवा कानून और टीकाकरण वितरण प्रणालियों को प्रभावित किया।
- ये संगठन विधि निर्माताओं को महत्वपूर्ण विशेषज्ञता भी प्रदान करते हैं। विद्वान **रजनी कोठारी** का मानना है कि **फिक्की और एसोचौम** जैसे संगठन लगातार **व्यापक नीतिगत दस्तावेज** और शोध प्रदान करते हैं जो सरकारी निर्णयों को प्रभावित करते हैं। हाल ही में श्रम संहिता संशोधनों में उद्योग संगठनों और ट्रेड यूनियनों दोनों का पर्याप्त योगदान शामिल था।
- फिर भी, दबाव समूह कभी-कभी **लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को विकृत कर सकते हैं।** राजनीतिक विद्वान **मैनकर ओल्सन** "सामूहिक कार्रवाई के तर्क" के खिलाफ चेतावनी देते हैं, जिसमें अच्छी तरह से संगठित अल्पसंख्यक हित व्यापक सार्वजनिक कल्याण को पीछे छोड़ सकते हैं। कृषि सुधारों के खिलाफ हाल ही में किसानों के प्रदर्शनों ने प्रभावशाली कृषि लॉबी की सरकार की पहलों का प्रभावी ढंग से विरोध करने की क्षमता को दर्शाया, हालांकि आलोचकों ने तर्क दिया कि इससे आवश्यक आधुनिकीकरण स्थगित हो सकता है।
- एक और आलोचना उनके असंगत चित्रण से संबंधित है। विद्वान **गेब्रियल आलमंड** का दावा है कि आर्थिक रूप से प्रभावशाली समूह अक्सर असंगत प्रभाव डालते हैं। भारत में दूरसंचार स्पेक्ट्रम आवंटन और पर्यावरण मंजूरी से संबंधित नीतिगत विकल्पों पर कॉर्पोरेट लॉबी के प्रभाव ने नीति-निर्माण में समानता पर चिंताएं पैदा की हैं।